पूर्वांचल खेती

वर्ष : 30 जनवरी 2020 अंक : 01

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

वर्ष 30 | जनवरी, 2020 | अंक 01

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ए. पी. राव

निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. अनिल कुमार

सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

मो. नं. 9415140493

सम्पादक मण्डल

डॉ. आर. आर. सिंह

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

डॉ. वी. एस. चन्देल

सह प्राध्यापक, उद्यान

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

कृषि उत्पादन में कम लागत की तकनीक 01
—डॉ. राम प्रताप सिंह

जायद में उर्द की वैज्ञानिक खेती 03
—डॉ. अशोक कुमार सिंह

ऊसर भूमि का सुधार 05
—डॉ. रामलखन सिंह, डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. ओ.पी. वर्मा एवं डॉ. एम.के. सिंह

पपीते की बागवानी 07
—डॉ. वी.पी. सिंह, डॉ. एस.के. वर्मा एवं डॉ. शैलेन्द्र सिंह

तोरई की वैज्ञानिक खेती आय का उत्तम स्रोत 09
—रोहित कुमार बाजपेई एवं डॉ. डी.पी. मिश्रा

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की आवश्यकता एवं महत्व 12
—सूरज कुमार एवं डॉ. पंकज कुमार

गेहूँ में लगने वाले रोग एवं रोकथाम 15
—शिवम दूबे, डॉ. डी.के. द्विवेदी एवं अंकज तिवारी

आलू के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन 17
—अंकज तिवारी, डॉ. डी.के. द्विवेदी एवं शिवम दूबे

प्याज में समेकित नाशीजीव प्रबंधन 19
—डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. गुलाब चन्द यादव एवं डॉ. छबि नाथ राम

पशुओं में परजीवी रोग 21
—डी.डी. सिंह, अनिल कुमार राय, एस.के. यादव एवं ए.पी. राव

घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन 24
—डॉ. सुरेन्द्र सिंह, डॉ. एस.के. सिंह, डॉ. एस.एन. लाल एवं डॉ. अनिल कुमार

जनवरी माह में किसान भाई क्या करें? 27

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 29

बॉक्स सूचनाएं

कृषि लागत कम करने हेतु सुझाव 06
संतुलित उर्वरक का प्रयोग 08
अमूल्य सुझाव 11
लेखकों से अनुरोध 16
पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये 26

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	वाराणसी	डॉ. संजीत कुमार	9837839411	05542–248019
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	9450547719	05498–258201
3.	बलिया	डॉ. रवि प्रकाश मौर्य	9453148303	–
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	9415188020	05278–254522
5.	मऊ	डॉ. एस. एन. सिंह चौहान	–	0547–2536240
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	9458362153	0541–2260595
7.	बहराइच	डॉ. एम. पी. सिंह	9415172725	05252–236650
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	9415155818	–
9.	आज़मगढ़	डॉ. के. एम. सिंह	9307015439	–
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	9455501727	
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	9984369526	–
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. एल. सी. वर्मा	7376163318	05541–241047
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	–
15.	बलरामपुर	डॉ. वी. पी. सिंह	9839420165	–
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	9918622745	–
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	9415039117	–
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	9838952621	–
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. विनायक शाही	8755011086	–
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. ओम प्रकाश	9452489954	–
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	9450885913	–
22.	अमहित–जौनपुर	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	–	–
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	9411320383	–

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाषा कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. शशांक शेखर सिंह	–	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	श्रीमती सरिता श्रीवास्तव	9415419712	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. एस. के. सिंह	9450164714	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. तेजेन्द्र कुमार	9415560503	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. गजेन्द्र सिंह	7379576412	0548–223690

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

भारतवर्ष में घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन का कार्य आदिकाल से होता रहा है। मुर्गी पालन की यह पद्धति सबसे सरल है जिसे छोटे और लघु कृषक, भूमिहीन मजदूर तथा अशिक्षित ग्रामीण महिलायें एवं बच्चे अपना सकते हैं। इस पद्धति में प्रायः 5 से 20 मुर्गियों का छोटा सा समूह एक परिवार के द्वारा पाला जाता है जो घर के आंगन, पिछवाड़े तथा गली कूचों में अन्न के गिरे दाने, झाड़ फूसों के बीज, कीड़े मकोड़े, घास की कोमल पत्तियाँ तथा घर की जूठन इत्यादि खाकर अपना पेट भरता है। केवल प्रतिकूल वातावरण में निम्न कोटि का थोड़ा सा अनाज खिलाने की जरूरत पड़ती है। इनके रात्रि विश्राम तथा शिकारियों से बचाव के लिए घर के टूटे फूटे भाग काम में आते हैं या बाँस की पुरानी टोकरी इत्यादि काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार उनके रख–रखाव और खाने पीने पर कोई खर्च नहीं करना पड़ता है। अंडे और मांस बिना किसी लागत के उपलब्ध होते हैं।

पूर्वांचल खेती के इस अंक में **कृषि उत्पादन में कम लागत की तकनीक, जायद में उर्द की वैज्ञानिक खेती, ऊसर भूमि का सुधार, पपीते की बागवानी, तोरई की वैज्ञानिक खेती आय का उत्तम स्रोत, एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की आवश्यकता एवं महत्व, गेहूँ में लगने वाले रोग एवं रोकथाम, आलू के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन, प्याज में समेकित नाशीजीव प्रबंधन, पशुओं में परजीवी रोग, घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन, जनवरी माह में किसान भाई क्या करें, प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के** जैसे लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि किसानों की आय में वृद्धि के लिये यह अंक उपयोगी सिद्ध होगा।

(ए.पी. राव)

कृषि उत्पादन में कम लागत की तकनीक

डॉ. राम प्रताप सिंह*

उत्तर प्रदेश जनसंख्या (16.61 करोड़) की दृष्टि से भारतवर्ष (102.70 करोड़) में प्रथम स्थान रखता है। प्रदेश में 168.12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र पर खेती की जाती है जिसमें से लगभग 76 प्रतिशत शुद्ध सिंचित क्षेत्र है। यद्यपि प्रदेश में कृषि उत्पादन बढ़ाने के समस्त प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं परन्तु फिर भी जोतों के निरन्तर आकार, मृदा की उर्वरता में ह्रास, कृषि उत्पादन लागत में वृद्धि न होने जैसे कुछ प्रमुख कारणों से कृषि विकास की गति मंद पड़ गई है। कृषि क्षेत्र की विकास दर में वृद्धि के लिये उपलब्ध संसाधनों का न केवल अनुकूलतम उपयोग कृषि उत्पादन लागत में कमी के उपायों पर भी बल दिया जाना आवश्यक हो गया है। उत्पादन लागत को कम करने में कम अथवा बगैर अतिरिक्त लागत युक्त तकनीकों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इस परिपेक्ष्य में कुछ तकनीकों/विधाओं का विवरण निम्नवत है

(1) फसल/प्रजातियाँ का चुनाव

उत्तर प्रदेश 9 कृषि जलवायु क्षेत्रों में विभक्त है। क्षेत्रीय विविधता के अनुरूप फसलों एवं तदनुसार उपर्युक्त प्रजातियों के उपयोग से बगैर किसी अतिरिक्त लागत के उत्पादन स्तर में वृद्धि लाई जा सकती है।

- सीमित सिंचित वाले क्षेत्रों में धान/गेहूँ जैसी फसलों के स्थान पर कम सिंचाई माँग वाली फसल जैसे ज्वार, बाजरा, अरहर, तिल, अलसी, मसूर, सरसों जैसी फसलें बोई जानी चाहिये।
- विलम्ब से बोये जाने की दशा में गेहूँ की उचित उन्नत प्रजातियों जैसे हलना, मालवीय 234 का प्रयोग करें।

(2) समय से बुवाई/रोपाई

प्रदेश में सर्वाधिक क्षेत्र धान–गेहूँ फसल चक्र के अन्तर्गत है परन्तु ये दोनों ही फसलें नियत समय से नहीं बोये जाने के कारण अपनी क्षमता के अनुसार उत्पादन देने में समर्थ नहीं होती है। प्रचलित प्रजातियों को दृष्टिगत रखते हुये धान की रोपाई जुलाई के प्रथम पक्ष में एवं गेहूँ की बुवाई नवम्बर के प्रथम पक्ष में पूर्ण कर ली जाये तो उत्पादन बगैर किसी अतिरिक्त लागत के बढ़ जायेगा। यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि विलम्ब की संभावना को देखते हुए तद्नुसार उपर्युक्त प्रजातियों को अपनाया जाये।

(3) बीज शोधन

फसलों की वृद्धि एवं विकास के दौरान रोग एवं कीटों के प्रभाव से सर्वाधिक क्षति होती है। प्रायः रोग/कीट का प्रकोप समय से (प्रारम्भिक अवस्था) में ज्ञात न होने से अत्यधिक क्षति का सामना कृषकों को करना पड़ता है। धान, गेहूँ, गन्ना, आलू, दलहनी एवं तिलहनी फसलों को बीज शोधन के माध्यम से संभावित रोग/कीटों से मुक्त रखा जा सकता है। वर्तमान में जैव बीज शोधकों यथा ट्राइकोडरमा के प्रयोग से कम लागत में फसल बीज के जमाव में वृद्धि के साथ–साथ उन रोगों से संरक्षित भी रखा जा सकता है। बीज शोधन की लागत खड़ी फसलों में रोग/कीटों के उपचार की तुलना में बहुत कम व्यय होता है साथ ही फसल की क्षति एवं होने वाली हानियों से भी बचा जा सकता है। जैव उर्वरकों यथा एजेटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलियम, राइजोबियम, पी.एस.बी. आदि से उपचार कर फसलों के पोषक तत्वों की माँग को पूरा किया जा सकता है। शोध परिणामों में यह पाया गया है कि सरसों के बीज को एजोस्पाइरिलियम से उपचारित करने पर उत्पादन में वृद्धि होती है जबकि इस पर लागत कम आती है।

(4) उर्वरक/जैव उर्वरक

विभिन्न फसलों को 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। इन 16 तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन एवं

*सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

ऑक्सीजन प्रकृति से मिलते हैं, शेष 13 तत्व पौधे जमीन से लेते हैं। इन 13 तत्वों में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की ज्यादा मात्रा में पौधों को जरूरत होती है। इसलिये वह मुख्य पोषक तत्व कहलाते हैं। इन्ही मुख्य पोषक तत्वों को हम रसायनिक उर्वरकों यथा यूरिया, डी.ए.पी., एन.पी.के. म्यूरेट ऑफ पोटाश, सिंगल सुपर फास्फेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट आदि से देते हैं। यह रसायनिक उर्वरक कितनी–कितनी मात्रा में व कैसे एवं कब फसलों में दिया जाये, जिससे ज्यादा से ज्यादा शुद्ध लाभ आपको मिल सके। इसका सबसे अच्छा तरीका मिट्टी की जाँच कराकर उर्वरकों की मात्रा का पता लगाना है। फास्फेटिक उर्वरकों के स्थान पर पी.एस.बी. जैव उर्वरक का प्रयोग कर लागत को कम किया जा सकता है। अतः किसान भाई ध्यान दें।

- हमारे खेतों में फास्फोरस की काफी मात्रा है, क्योंकि हम जो फास्फोटिक खेतों में डालते हैं पहली बार में उसका 25 प्रतिशत ही फसलों को मिलता है, शेष मिट्टी में भण्डारित हो जाता है। इसे फसलों को प्राप्त कराने हेतु पी.एस.बी. जैव उर्वरक का प्रयोग करें, जो भण्डारित फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में लाकर फसलों को उपलब्ध कराता है।
- पी.एस.बी. जैव उर्वरक 75 प्रतिशत अनुदान पर उलब्ध है। इसको एक पैकेट से 10 किग्रा बीज को उपचारित कर बुवाई करें। 10 पैकेट पी.एस.बी. एक बोरी डी.ए.पी. के बराबर होती है।
- देशी व केचुए की खाद एवं पी.एस.बी. के इस्तेमाल से फास्फोरस की जरूरत में 20 प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है। इसके प्रयाग से गेहूँ एवं अन्य रबी फसलों में फास्फोरस की संस्तुत मात्रा में 20 प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है।
- डी.ए.पी. के स्थान पर फास्फोरस के अन्य स्रोत जैसे सिंगल सुपर फास्फेट, एन.पी.के., एन.पी. काम्प्लेक्स उर्वरकों का इस्तेमाल करें।
- बुवाई के समय फास्फेटिक उर्वरक केवल कूड़ों में प्रयोग करें, इससे फास्फोरस उपलब्धता की क्षमता में 15 प्रतिशत सुधार होता है।
- क्षारीय मिट्टी का जिप्सम में सुधार करने पर मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

(5) सहफसली खेती

कृषि योग्य क्षेत्र पर जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते दबाव से छोटी हो रही जोतों से आर्थिक रूप से लाभप्रद उत्पादन करना कठिन हो रहा है। ऐसी दशा में उपर्युक्त सहफसली खेती से न केवल प्रति इकाई उत्पादन बल्कि प्राकृतिक कारणों (रोग/कीट/प्रतिकूल मौसम प्रकोप) से संभावित हानि के स्तर को भी कम किया जा सकता है। कुछ प्रमुख सहफसली प्रणाली/फसल चक्र निम्नवत है

- गेहूँ + सरसों (9:1 के पंक्ति अनुपात में बुवाई)
- आलू+राई (3:1 के पंक्ति अनुपात में बुवाई)
- गन्ना+राई (1:2 के पंक्ति अनुपात में बुवाई)
- गन्ना+मसूर (1:3 के पंक्ति अनुपात में बुवाई)
- उर्द– सरसों फसल चक्र में सरसों का उत्पादन एवं तेल की प्रतिशत बढ़ जाती है साथ ही भूमि की उर्वरता भी बनी रहती है।

सहफसली पद्धति में दोनों फसलों की प्रजाति एवं प्रकृति भिन्न रखी जाती है, इससे पोषक तत्वों की आपूर्ति सिंचाई जल की आवश्यकता व अन्य देख–रेख में संतुलन बना रहता है।

(6) उपर्युक्त कृषि यंत्रों का उपयोग

कृषकों के स्तर पर कृषि कार्य में श्रम की लागत पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता है। पारम्परिक पशु/मानव श्रम से किये जाने वाले कार्यों का कम लागत पर अपेक्षाकृत काफी कम समय में उच्च गुणवत्ता के साथ संपादित किया जा सकता है।

- बुवाई हेतु बीज सह उर्वरक ड्रिल का प्रयोग बीज एवं उर्वरक दोनों की उपयोग दक्षता को बढ़ाता है।
- जीरो टिलेज सीड ड्रिल के माध्यम से विलम्ब की दशा में धान के खेत में बगैर खेत के अतिरिक्त तैयारी किये बुवाई की जा सकती है। इससे न केवल खेती की तैयारी पर होने वाले व्यय की बचत

(शेष पृष्ठ 4 पर)

जायद में उर्द की वैज्ञानिक खेती

डॉ. अशोक कुमार सिंह*

उर्द एक मुख्य दलहनी फसल है जिसका उत्तर प्रदेश में अधिकतर क्षेत्रों में खेती होती है। जायद में भी समय से बुवाई करके उर्द की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

भूमि एवं खेत की तैयारी

जायद में उर्द की खेती के लिए हल्की दोमट तथा मटियार भूमि उपयुक्त रहती है। खेत में पलेवा करने के बाद 2–3 जुताई करके या रोटावेटर से जुताई करके खेत को तैयार कर लेना चाहिए। जुताई के बाद पाटा अवश्य चला देना चाहिए जिससे खेत में नमी बनी रहे।

बीज की मात्रा एवं बीज शोधन

उर्द का पौधा जायद में कम बढ़ता है इसलिए 15–18 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के लिए उपयोग करना चाहिए। बीजोपचार हेतु 2.5 ग्राम थीरम अथवा 5 ग्राम ट्राइकोडरमा+सूडोमोनास या 2 ग्राम थीरम और 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से बीजों को उपचारित करना चाहिए। इसके बाद मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. दवा 10 मिली प्रति किग्रा बीज की दर से बीजों को शोधित कर देना चाहिए।

उपर्युक्त बीज शोधन की प्रक्रिया के बाद उर्द के लिए विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। इस कल्चर के प्रयोग के लिए 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर को 10 किग्रा बीज के ऊपर छिड़क कर हल्के हाथ से मिलाना चाहिए जिससे बीज के ऊपर कल्चर का हल्की पर्त बन जाये। इस उपचारित बीज को छाये में 1–2 घंटे तक सुखाना चाहिए। इसके उपरान्त बुवाई प्रातः 9 बजे तक या सायंकल 4 बजे के बाद करना चाहिए। पी.एस.बी. कल्चर को भी उपर्युक्त विधि की भाँति बीजों को उपचारित कर लेना चाहिए।

बुवाई की विधि

अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए उर्द की बुवाई लाइनों में करना चाहिए। कूड़ से कूड़ की दूरी 20–25 सेमी रखना चाहिए। उर्द की बुवाई के तुरन्त बाद खेत में पाटा चला देना चाहिए।

उर्द की खेती में उर्वरकों का प्रयोग एवं सिंचाई जल का प्रबंध

मृदा परीक्षण की संस्तुति के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना लाभदायक होता है। मृदा परीक्षण के अभाव में 20 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फास्फोरस, 20 किग्रा गंधक प्रति हेक्टेयर की दर से उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। उर्वरकों की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में बीज के नीचे 2–3 सेमी पर देना चाहिए। आलू की खेती के बाद यदि उर्द की बुवाई करनी है तो नाइट्रोजन की मात्रा की कोई आवश्यकता नहीं होती है। बुवाई के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई करनी चाहिए। इसके उपरान्त आवश्यकतानुसार

*सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय, कोटवा, आजमगढ़, उ.प्र.

सिंचाई करना चाहिए। उर्द की खेती में स्प्रिंकलर से सिंचाई अधिक लाभप्रद रहता है।

खरपतवार नियंत्रण

उर्द की खेती में पहली सिंचाई के बाद (बुवाई के 30–35 दिन बाद) खरपतवार को गुड़ाई करके खेतों से निकाल देना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण हेतु उर्द की पंक्तियों में की गई बुवाई फसल में वीडर का प्रयोग आर्थिक रूप से लाभदायी है। रसायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथलीन 30 ई.सी. के 3.3 लीटर या एलाक्लोर 50 ई.सी. 3 लीटर मात्रा को 600–700 लीटर पानी में घोलकर उर्द की बुवाई के 2–3 दिन के अन्दर खेत में उर्द के बीजों के अंकुरण से पहले छिड़काव करना चाहिए।

कीटों से फसल सुरक्षा

- पीले चित्र वर्ण (मोजैक) के नियंत्रण के लिए रोग प्रतिरोधी प्रजाति के उर्द की बुवाई समय से करना चाहिए। रसायनिक नियंत्रण के लिए जब पौधों पर 5–10 सफेद मक्खी प्रति पौध दिखाई पड़ने लगे तब मिथाईल–ओ डिमेटॉन 25 ई.सी. या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- थ्रिप्स लगने पर मिथाईल–ओ डिमेटॉन 25 ई.सी. की 1 लीटर मात्रा या डायमिथोएट 30 ई.सी. 1 लीटर की मात्रा को प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। इसी घोल को हरे फुदके लगने पर उनके नियंत्रण के लिए उपर्युक्त मात्रा में ही छिड़काव करना चाहिए। फलीबेधक कीटों के नियंत्रण हेतु क्यूनालफास 25 ई.सी. की 1.25 लीटर मात्रा को प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

जायद उर्द की कटाई एवं भण्डारण

फसल पूरी तरह से पक जाने पर जब उर्द की फलियाँ काली हो जाये तब कटाई करनी चाहिए। उर्द के भण्डार के लिए उर्द के दानों को अच्छी तरह से सुखा लेना चाहिए। 10 प्रतिशत से अधिक नमी रहनी चाहिए। उर्द के भण्डार के लिए स्टोरेजविन्स का प्रयोग करना चाहिए। सूखी नीम की पत्ती के साथ उर्द को भण्डार करने से कीटों से सुरक्षा प्राप्त होती है। भण्डारित उर्द की आवश्यकतानुसार निरीक्षण करते रहना चाहिए और उसी अनुसार उपचार करते रहना चाहिए।

जायद उर्द की खेती के लिए आवश्यक बिन्दु

(1) उर्द की बुवाई समय से 15 फरवरी से 15 मार्च के बीच कर देना चाहिए।

(2) प्रथम सिंचाई 23–30 दिन बुवाई के बाद करना चाहिए।

(3) थ्रिप्स की निगरानी करके उनका नियंत्रण सुझाये अनुसार करना चाहिए।●

(पृष्ठ 2 का शेष)

होती है बल्कि समय से बुवाई के कारण उत्पादन पर भी कुप्रभाव नहीं पड़ता।

- रोटावेटर की सहायता से खेत की जुताई, बुवाई के लिये तैयारी, समतलीकरण आदि कार्यों को सुगमता से कम समय में पूर्ण किया जा सकता है।
- स्प्रिंकलर/ड्रिप सिंचाई, बुवाई से सीमित जल वाले, असमतल क्षेत्रों, बागवानी, नगदी फसलों के उत्पादन में कम लागत पर अधिक क्षेत्र को सिंचित किया जा सकता है। आम के बगीचों में ड्रिप सिंचाई विधि से लगभग 69 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत एवं इसके साथ उर्वरक प्रयोग से पैदावार लागत एवं अन्य व्यय में कमी की जा सकती है।●

ऊसर भूमि का सुधार

डॉ. रामलखन सिंह*, डॉ. प्रदीप कुमार**, डॉ. ओ.पी. वर्मा*** एवं डॉ. एम.के. सिंह****

उत्तर प्रदेश में लगभग 5.62 लाख हेक्टेयर ऊसर भूमि है। इस भूमि में कुछ क्षेत्रों में खरीफ में धान तथा कुछ क्षेत्रों में खरीफ एवं रबी में क्रमशः धान व गेहूँ की खेती की जाती है, परन्तु उत्पादन अत्यन्त ही कम होता है। ऊसर भूमि के सुधार का कार्य जनवरी, फरवरी से प्रारम्भ हो जाता है। ऊसर सुधार करने हेतु क्षेत्र का चयन, मृदा परीक्षण, प्रक्षेत्र विकास, सिंचाई सुविधा का सृजन, जल निकास नाली का निर्माण रसायनिक मृदा सुधारकों का प्रयोग हरी खाद उत्पादन एवं फसल उत्पादन का कार्य किया जाता है जो समयानुसार सारिणी–1 में वर्णित है।

सारिणी–1
ऊसर सुधार हेतु क्षेत्र का चयन

कार्यमद	अवधि
ऊसर क्षेत्र का चयन, सर्वेक्षण, नियोजन सिंचाई सुविधा का सृजन, मिट्टी परीक्षण हेतु मृदा नमूना एकत्रीकरण व विश्लेषण, निवेशों की व्यवस्था इत्यादि।	जनवरी–फरवरी
प्रक्षेत्र विकास जैसे मेड़बन्दी, समतलीकरण एवं जल निकास नाली का निर्माण।	फरवरी–मार्च
रसायनिक मृदा सुधारकों का प्रयोग एवं हरी खाद।	अप्रैल, मई, जून
धान की रोपाई।	जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई तक

भूमि का विकास कार्य

सर्वप्रथम भूमि की मेड़बंदी व समतलीकरण का कार्य करके भूमि की बनावट को ध्यान में रखते हुए नलकूप, सिंचाई नाली, जल निकास व सड़क हेतु स्थान को चिन्हित कर लें। मेड़ मजबूत बनायी जाए ताकि यह वर्षाकाल में जल बहाव के कारण बह न जाए।

मेड़बंदी का कार्य पूरा हो जाने के पश्चात खेत को 15–20 सेमी गहरा जोतकर लेवलर की सहायता से समतल कर लेना चाहिए। नई तोड़ी ऊसरीली भूमि की 15–20 सेमी गहरी जुताई आवश्यक है जिससे रिसाव क्रिया में सुविधा हो।

जल निकास नाली का निर्माण चकरोड के दोनों ओर खेती की सतह से 60–90 सेमी गहरी और 1.2 मीटर चौड़ी होनी चाहिए। इन जल निकास नालियों द्वारा खेती का लवणयुक्त पानी किसी नदी/नाले में बहा दिया जाये।

मृदा सुधारक रसायन

मृदा सुधारक की गणना हेतु मृदा परीक्षण के अनुसार जिप्सम की आवश्यकता मान के अनुसार मृदा सुधारक का निर्धारण आवश्यक है। इसके प्रयोग से पूर्व खेत में 5–6 मीटर चौड़ी क्यारियाँ लम्बाई में बना लेना चाहिए। मृदा परीक्षण परिणाम की संस्तुति के अनुसार मृदा सुधारक (जिप्सम) का प्रयोग किया जाये।

जिप्सम का प्रयोग

इसे पूरे खेत में एक समान फैलाने के तुरन्त बाद कल्टीवेटर या देशी हल से भूमि की ऊपरी 8–10 सेमी की सतह में मिलाकर और खेत को समतल करके पानी भर करके रिसाव क्रिया सम्पन्न करना चाहिए। पहले खेत में 12–15 सेमी पानी भरकर छोड़ देना चाहिए। 7–8 दिनों बाद जो पानी बचे उसे जल निकास नाली द्वारा बाहर निकालकर पुनः 12–15 सेमी पानी भरकर रिसाव क्रिया सम्पन्न करना चाहिए।

उपयुक्त फसल प्रजाति और फसल चक्र का चयन

मृदा सुधारक रसायन के प्रयोग तथा लीचिंग के बाद शुरू के 2–3 वर्षों में धान की फसल को अनिवार्य रूप से लिया जाना चाहिए। उसके पश्चात भूमि के सुधर जाने पर बाजरा, मक्का, तिल एवं सरसों की फसल ली जा सकती है। ऊसरीले क्षेत्र के लिए उन्हीं प्रजातियों को

*एस.एस.एस. सस्य विज्ञान, के.वी.के. मनकापुर, गोण्डा–।।, **एस.एम.एस., पादप सुरक्षा कृषि ज्ञान केन्द्र, गाजीपुर–।, ***वरिष्ठ वैज्ञानिक व अध्यक्ष, के.वी.के. मनकापुर गोण्डा, ****एस.एम.एस. उद्यान, के.वी.के. मनकापुर गोण्डा, उ.प्र.

चयन करना चाहिए जो ऊसर के प्रति सहनशील हो। ऊसर क्षेत्र में निम्न फसल चक्र अपनाये जा सकते हैं।

प्रथम वर्ष खरीफ में धान–नरेन्द्र संकर धान–1, पन्त–12, सरजू–52, नरेन्द्र धान–1, सी.एस.आर–10, सी.एस.आर.–13, 27, 30 ऊसर धान 2 व 3 तथा रबी में गेहूँ की के.आर.एल. 19 ए, लोक–1 तथा डब्लू.एच. 157, राज–3077 तथा जायद में ढैंचा की हरीखाद।

द्वितीय वर्ष में धान–गेहूँ/राई–ढैंचा (हरी खाद यदि पहले वर्ष में बोई गई हो) तृतीय वर्ष में धान–गेहूँ/बरसीम/आलू/शरदकालीन गन्ना।

हरी खाद तथा ऊसर पैच का उपचार

ऊसर भूमि में जीवांश पदार्थ बहुत कम होता है। हरी खाद ऊसर सुधार का अभिन्न अंग है। बगैर हरी खाद लिए हुए भूमि का पूर्ण सुधार संभव नहीं है। बहुधा मृदा सुधार रसायन के प्रयोग के बाद भी खेत में ऊसर के पैच दिखाई पड़ते हैं, जो हरी खाद के प्रयोग से कम हो जाते हैं। ऐसे ऊसर पैच की मेड़बंदी करके पुनः जिप्सम का प्रयोग 2 किग्रा प्रतिवर्ग मीटर की दर से करते हैं, जो हरी खाद के प्रयोग से कम जो जाते हैं और ऊसर क्षेत्र को चिन्हित करके उसमें 20–30 सेमी मोटाई का धान का पुआल बिछाकर और पानी भरकर सड़ाना चाहिए।

नत्रजन एवं जिंक का प्रयोग

ऊसरीली भूमि में नत्रजन और जिंक की अत्यधिक कमी होती है। अतः ऊसर भूमि में खेती करने पर नत्रजनिक उर्वरक की मात्रा को 15–20 प्रतिशत बढ़ा लेना चाहिए। नई तोड़ी गई ऊसरीली भूमि में प्रथम वर्ष खरीफ में 50 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर और बाद के वर्षों में 25–30 किग्रा प्रति हेक्टेयर का प्रयोग नियमित रूप से करते रहना चाहिए। ऊसर भूमि में शुरू के 3–4 वर्षों तक पोटाश उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु फास्फेट की कमी रहती है, जिसका प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए।

काई की रोकथाम

नई तोड़ी गई ऊसर भूमि में शुरू के 2–3 वर्षों में रेशेदार हरी काई (एल्गी) की समस्या रहती है जो धान की रोपाई के बाद एक मोटी पर्त के रूप में फैलकर पौधों को ढक लेती है। इस काई को हाथ द्वारा पानी से छानकर निकाला जा सकता है अथवा काई पर 0.2–0.3 प्रतिशत कापर सल्फेट (तूतिया) के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

ऊसर सुधार का उपयुक्त समय

ऊसर सुधार का कार्य वर्ष भर किया जा सकता है। गर्मी के महीनों में भूमि में पानी सोखने की शक्ति सर्वाधिक होने के कारण रिसाव क्रिया में सुगमता होती है।●

कृषि लागत कम करने हेतु सुझाव

- ऊसर व बंजर भूमि का उपचार कर कृषि योग्य बनाकर खेती के प्रयोग में लाएं।
- सिंचाई जल उपयोग में बृद्धि हेतु ड्रिप एवं स्प्रिकलर पद्धति पर बढावा देना तथा इसके प्रयोग पर प्रशिक्षण प्रदान कर इसे बढाने तथा क्रान्तिक अवस्थाओं पर उचित मात्रा में सिंचाई करें।
- कृषि लागत में कमी हेतु कृषि यन्त्रीकरण का प्रयोग कर जीरो टिलेज, सीडड्रिल व कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ भूसा बनाने वाली मशीन के प्रयोग पर बल दिया जाय।
- मृदा स्वास्थ्य बढानें के लिए जैविक उर्वरक, कार्बनिक खाद, फसल अवशेषों का प्रबन्ध व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुसार उर्वरकों के संतुलित प्रयोग पर बल दिया जाना जिससे उत्पादन बढ़नें के साथ लागत में कमी आये।

पपीते की बागवानी

डॉ. वी.पी. सिंह*, डॉ. एस.के. वर्मा** एवं डॉ. शैलेन्द्र सिंह***

पपीता सबसे कम समय में फल देने वला पेड़ है इसलिए कोई भी इसे लगाना पसंद करता है, पपीता न केवल सरलता से उगाया जाने वाला फल है, बल्कि जल्दी लाभ देने वाला फल भी है, यह स्वास्थवर्धक तथा लोकप्रिय है, इसी से इसे अमृत घट भी कहा जाता है। पपीता में कई एन्जाइम भी पाये जाते हैं तथा इसके ताजे फलों को सेवन करने से लम्बी कब्ज़ियत की बीमारी भी दूर की जा सकती है।

जलवायु

पपीते की अच्छी खेती गर्म नमी युक्त जलवायु में की जा सकती है। इसे अधिकतम 38–44 डिग्री सेल्सियस तक तापमान होने पर उगाया जा सकता है।

भूमि

जमीन उपजाऊ हो तथा जिसमें जल निकास अच्छा हो तो पपीते की खेती उत्तम होती है, जिस खेत में पानी भरा हो उस खेत में पपीता कदापि नहीं लगाना चाहिए क्योंकि पानी भरे रहने से पौधे में कॉलर रॉट बीमारी लगने की संभावना रहती है, अधिक गहरी मिट्टी में भी पपीते की खेती नहीं करना चाहिए।

भूमि की तैयारी

खेत को अच्छी तरह जोत कर समतल बनाना चाहिए तथा भूमि का हल्का ढाल उत्तम है, 2 गुणा 2 मीटर के अन्तर पर 45 सेमी लम्बा, चौड़ा, गहरा गढ्ढा बनाना चाहिए, इन गढ्ढों में 10 किग्रा सड़ी गोबर अथवा 1–2 किग्रा नादेप/वर्मीकम्पोस्ट की खाद, 500 ग्राम सुपर फॉस्फेट एवं 250 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश को मिट्टी में मिलाकर पौधा लगाने के कम से कम 10 दिन पूर्व भर देना चाहिए।

किस्म

सूर्या, ताइवान–7, रेड लेडी, पूसा मेजस्टी एवं पूसा जाइंट, कुंर्गहनीड्यू, पूसा ड्वार्फ, पूसा डेलीसियस, पूसा नन्हा आदि प्रमुख किस्में हैं।

बीज

एक हेक्टेयर के लिए 500 ग्राम से एक किग्रा बीज की आवश्यकता होती है, पपीते के पौधे बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं, एक हेक्टेयर खेत में प्रति गढ्ढे 2 पौधे लगाने पर 5000 पौधों की आवश्यकता होगी।

लगाने का समय एवं तरीका

पपीते के पौधे पहले रोपणी में तैयार किये जाते हैं, पौधे पहले से तैयार किये गढ्ढे में जून, जुलाई में लगाना चाहिए, जहाँ सिंचाई का समुचित प्रबंध हो वहाँ सितम्बर से अक्टूबर तथा फरवरी से मार्च तक पपीते के पौधे लगाये जा सकते हैं।

नर्सरी में रोपा तैयार करना

इस विधि द्वारा बीज पहले भूमि की सतह से 15 से 20 सेमी ऊँची क्यारियों में कतार से कतार की दूरी 10 सेमी तथा बीज की दूरी 3 से 4 सेमी रखते हुए लगाते हैं। बीज को 1 से 3 सेमी से अधिक गहराई पर नहीं बोना चाहिए, जब पौधे करीब 20 से 25 सेमी ऊँचे हो जायें तब प्रति गड्ढा 2 पौधे लगाना चाहिए।

पौधे पॉलीथीन की थैली में तैयार करने की विधि

20 सेमी चौड़े मुँह वाली, 25 सेमी लम्बी तथा 150 छेद

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य), कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच–271801

वाली पॉलीथीन थैलियाँ लें इन थैलियों में गोबर की खाद, मिट्टी एवं रेत का समिश्रण भरना चाहिए, थैली का ऊपरी 1 सेमी भाग नहीं भरना चाहिए प्रति थैली 2 से 3 बीज होना चाहिए, मिट्टी में हमेशा पर्याप्त नमी रखना चाहिए, जब पौधे 15 से 20 सेमी ऊँचे हो जावें तब थैलियों के नीचे से धारदार ब्लेड द्वारा सावधानीपूर्वक काट कर पहले तैयार किये गये गढ्डों में लगाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

एक पौधे को वर्ष भर में 250 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम स्फुर एवं 500 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है, इसे छः बराबर भाग में बाँट कर प्रति 2 माह के अंतर से खाद तथा उर्वरक देना चाहिए, खाद तथा उर्वरक को मिट्टी में मिलाकर सिंचाई करना चाहिए। इस मिश्रण को नर पौधों को और ऐसे पौधों को नहीं देना चाहिए, जिसे 4 से 6 माह बाद निकालकर फेंकना है।

नर पौधों को अलग करना

पपीते के पौधे 90 से 100 दिन के अन्दर फूलने लगते हैं तथा नर फूल छोटे–छोटे गुच्छों में लम्बे डंठलयुक्त होते हैं। नर पौधों पर पुष्प 1 से 3 मीटर के लम्बे तने पर झूलते हुए तथा छोटे होते हैं। प्रति 100 मादा पौधों के लिए 5 से 10 नर पौधे छोड़ कर शेष नर पौधों को उखाड़ देना चाहिए। मादा पुष्प पीले रंग के 2.5 सेमी लम्बे तथा तने के नजदीक होते हैं।

निंराई, गुड़ाई तथा सिंचाई

गर्मी में 4 से 7 दिन तथा ठण्ड में 10 से 15 दिन के अंतर पर सिंचाई करना चाहिए, पाले की चेतावनी पर तुरंत सिंचाई करें, सिंचाई के बाद निराई–गुड़ाई सावधानी पूर्वक करें ताकि जड़ों तथा तने को नुकसान न हो।

फलों को तोड़ना

पौधे लगाने के 9 से 10 माह बाद फल तोड़ने लायक हो जाते हैं। फलों का रंग गहरा हरे रंग से बदलकर हल्का पीला होने लगता है तथा फलों पर नाखून लगने से दूध की जगह पानी तथा तरल निकलता हो तो समझना चाहिए कि फल पक गया। फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए। छोटी अवस्था में फलों की छटाई अवश्य चाहिए।

पौध संरक्षण

माइट, एफीड्स तथा फल मक्खी जैसे कीटों का प्रकोप इन पर देखा गया है। इसके नियंत्रण को मेटासिस्टाक्स 1 लीटर दवा प्रति हेक्टेयर की दर से तथा दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतर से करना चाहिए। फल एवं तना सड़न बीमारी से पौधों को बचाने के लिए तने के पास पानी न जमने दें। जिस भाग में रोग लगा हो वहाँ चाकू से खुरच कर बोर्डो पेस्ट भर भर देना चाहिए। पाउडरी मिलड्यू के नियंत्रण के लिए सल्फर डस्ट 30 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अंतराल में छिड़काव करें।

उपज तथा आर्थिक लाभ

प्रति हेक्टेयर पपीते का उत्पादन 40–45 टन होता है। यदि 15000 रूपये/टन भी कीमत आंकी जाये तो किसानों को प्रति हेक्टेयर 350000–400000 रूपये का शुद्ध लाभ प्राप्त होगा। किसान भाई फरवरी–मार्च में पपीते की रोपाई के साथ गेंदा की सह फसल खेती करके खाली समय में अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं।●

संतुलित उर्वरक का प्रयोग

लगातार फसल उगाने से मृदा के स्वास्थ्य में हो रही गिरावट के कारण कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में स्थिरता की स्थिति हो गयी है। समय रहते खेत की मिट्टी की दशा को सुधारने एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि किसान भाई अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवाने के पश्चात संस्तुत मात्रा में संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य बनवायें। फसल अवशेष को न जलाएं उसका प्रबन्ध कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाएं। खेत को खाली न छोड़ें बल्कि हरी खाद हेतु सनई व ढैचा पलटकर हरी खाद बनायें। जीवांशिक खादों का अधिक से अधिक प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाने पर बल दें।

तोरई की वैज्ञानिक खेती आय का उत्तम स्रोत

रोहित कुमार बाजपेई* एवं डॉ. डी.पी. मिश्रा**

तोरई की खेती सारे भारत में की जाती है। लेकिन इसकी खेती मुख्य रूप से केरल, उड़ीसा, कर्नाटक, बंगाल और उत्तर प्रदेश में की जाती है। यह बेल पर उगने वाली सब्जी होती है, जिसे हर मनुष्य खाने में पसंद करता है।

जलवायु

तोरई की खेती हर तरह के मौसम में की जाती है। लेकिन तोरई की अच्छी फसल लेने के लिए उष्ण और नम जलवायु सर्वोत्तम मानी जाती है।

बुवाई का समय

गर्मी के मौसम की फसल लेने के लिए इसकी बुवाई जनवरी से मार्च के महीने में करनी चाहिए। जबकि वर्षा कालीन फसलों के लिए जून से जुलाई का महीना सबसे अच्छा माना जाता है।

भूमि का चुनाव

इसकी खेती सभी प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक की जा सकती है। लेकिन जीवांश युक्त हल्की दोमट एवं उचित जल निकास वाली मिट्टी इसकी खेती के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। नदियों के किनारे वाले मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। जिस मिट्टी में तोरई की खेती की जा रही हो उस मिट्टी का पी.एच. मान उदासीन हो तो बेहतर होता है। इस मिट्टी में तोरई की अच्छी उपज मिल जाती है।

खेत की तैयारी

यह फसल अधिक निराई वाली फसल है। इसलिए इसके खेत में पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें। जुताई करने के बाद खेत में 2 या 3 बार कल्टीवेटर चलायें। जब खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाये तो ही तोरई की खेती करें।

बीज की मात्रा

तोरई के 4 से 5 किग्रा बीज की मात्रा एक हेक्टेयर भूमि के लिए पर्याप्त है। तोरई के बीज को खेत में बोने से पहले गौमूत्र से उपचारित करना चाहिए।

फसल लगाने का तरीका

तोरई के पौधे को कतारों में लगाना चाहिए। तोरई के एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच की दूरी 1.0 से 1.20 मीटर तक होनी चाहिए। तोरई की एक जगह पर दो बीज बोयें। इसके बीजों को अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए। यदि इसके बीजों को अधिक गहराई में बोया गया तो इसके अंकुरण में कमी आ सकती है।

तोरई की किस्में

पूसा नसदार, एम.ए. 11, कोयम्बटूर 1, कोयम्बटूर 2, पी.के.एम. 1, पूसा चिकनी, आर. 164, कल्याणपुर चिकनी, राजेन्द्र नेनुआ 1, राजेन्द्र आशीष, सी.एच.आर. जी. 1, पी.आर.जी. 1, पूसा स्नेहा, स्वर्ण मंजरी आदि किस्में भारत में उगाई जाती हैं।

पंजाब सदाबहार

इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके एक फल की लंबाई 20 सेमी की होती है और चौड़ाई 3 से 4 सेमी की होती है। इसका हर एक फल का रंग गहरा हरा और धारीदार होता है इसके अलावा फल कोमल और पतला होता है। तोरई के इस किस्म में सबसे

*शोध छात्र, **सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या–224229

अधिक प्रोटीन की मात्रा पाई जाती है।

तोरई की खेती में प्रयोग होने वाली खाद

तोरई की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए इसकी फसल में आर्गेनिक खाद और कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना चाहिए। इसकी फसल के लिए एक हेक्टेयर भूमि में 30 से 40 टन सड़ी हुई गोबर की खाद काफी होती है। इस खाद को खेत में जुताई करने से पहले अच्छी तरीके से बिखेर दें। इसके बाद ही खेत की जुताई करें, ताकि खाद मिट्टी में मिल जाये। खाद डालने के बाद ही बीजों की बुवाई करें। बीज बोने के लगभग 20 से 25 दिन के बाद फसल में जीवा मृत का छिड़काव करें। इसका दूसरा और तीसरा छिड़काव हर 15 दिन के बाद करें।

सिंचाई करने का तरीका

इसकी सिंचाई मौसम पर आधारित होती है। यदि तोरई को गर्मी में उगाया गया है तो इसकी सिंचाई 6 से 7 दिन के अंतर पर करें। इसके अलावा वर्षा ऋतु की फसलों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। इसकी सिंचाई वर्षा पर ही निर्भर होती है।

खरतपवार की रोकथाम करने के लिए

तोरई की खेत में उगे हुए छोटे–छोटे खरपतवार को जड़ समेत उखाड़कर निकाल देना चाहिए। इसके लिए केवल 2 से 3 बार हल्की निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

कीटों की रोकथाम के लिए

लालड़ी

यह कीट पौधे की हरी पत्तियों और फूलों को खाकर नुकसान पहुँचाता है। जब पौधे पर दो पत्तियों निकल जाती है। उसी समय इस कीट का कुप्रभाव शुरू हो जाता है। लालड़ी नामक कीट की सूंडी भूमि के अंदर होती है, जो भूमि के अंदर रहकर पौधे की जड़ों को नुकसान करती है। इसकी रोकथाम करने के लिए उपाय निम्नवत् है–

उपाय

नीम का काढ़ा या गौमूत्र को माइक्रोझाइम के साथ मिलाकर एक मिश्रण तैयार करें। इस तैयार मिश्रण की 250 मिली की मात्रा को किसी पम्प में डालकर फसलों पर छिड़काव करने से इस कीट का प्रभाव दूर हो जाता है।

फल को नुकसान पहुँचाने वाली मक्खी

यह मक्खी फलों में छेद करके घुस जाती है और वहीं अंडे दे देती है। इसके अंडों में से सूंडी निकल कर फल के अन्दर खाकर फल से बाहर निकल जाती है। इसके कारण फल बेकार हो जाता है। इस मक्खी का अधिकतर प्रभााव खरीफ वाली फसलों पर होता है। इसकी रोकथाम करना बहुत जरूरी है।

रोकथाम के उपाय

नीम का काढ़ा या गौमूत्र को माइक्रोझाइम के साथ मिलाकर एक मिश्रण तैयार करें। इस तैयार मिश्रण की 250 मिली की मात्रा को किसी पम्प में डालकर फसलों पर छिड़काव करने से इस कीट का प्रभाव दूर हो जाता है।

सफेद ग्रब

यह कीट भूमि के अंदर होता है, जो पौधे की जड़ों को खाता है। यह कीट कद्दू की किस्मों को हानि पहुँचाता है। इस कीट के प्रभाव को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय है।

रोकथाम का उपाय

इस कीट से बचने के लिए बुवाई करने से पहले मिट्टी में नीम की खाद का प्रयोग करें।

चूर्णी फफूँदी

यह एक फफूँदी जन्य रोग होता है। इस रोग में पौधे की पत्तियों और तनों पर सफेद दरदरा और गोलाकार जाल दिखाई देता है। धीरे–धीरे इसका आकार बढ़ जाता है। जब इसका आकार बढ़ जाता है तो इसका रंग कत्थई हो जाता है। पौधे की हरी–हरी पत्तियाँ सूखकर पीली हो जाती है और पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पौधे में यह रोग ऐरीसाईफी सिकोरेसीएरम नामक फफूँदी के कारण होता है। इसकी रोकथाम के लिए उपाय इस प्रकार से है।

रोकथाम के उपाय

नीम का काढ़ा या गौमूत्र को माइक्रो झाइम के साथ

मिलाकर एक मिश्रण तैयार करें। इस तैयार मिश्रण की 250 मिली की मात्रा को किसी पम्प में डालकर फसलों पर छिड़काव करने से इस फफूँदी का प्रभाव दूर हो जाता है।

मृदु रोमिल फफूँदी

पौधे में यह रोग एक फफूँदी के कारण होता है। इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर कोणा आकार के धब्बे बन जाते हैं, जो ऊपर से पीले या लाल भूरे रंग के होते हैं। पौधे में यह रोग स्यूडोपरोनोस्पारा क्युबेनिसिस नामक फफूँदी के कारण होता है।

इसकी रोकथाम के लिए

नीम का काढ़ा या गौमूत्र को माइक्रोझाइम के साथ मिलाकर एक मिश्रण तैयार करें। इस तैयार मिश्रण की 250 मिली की मात्रा को किसी पम्प में डालकर फसलों पर छिड़काव करने से इस फफूँदी का प्रभाव दूर हो जाता है।

मोजैक

पौधे में यह रोग विषाणु के कारण होता है। इस रोग में पौधे की पत्तियों की वृद्धि रूक जाती है और वे मुड़ जाती हैं। यह रोग चेंपा के द्वारा फैलता है। इस रोग में फल छोटे लगते हैं और उपज भी कम मिलती है। इसकी रोकथाम करना बहुत जरूरी होता है।

रोकने के उपाय

नीम का काढ़ा या गौमूत्र को माइक्रोझाइम के साथ मिलाकर एक मिश्रण तैयार करें। इस तैयार मिश्रण की 250 मिली की मात्रा को किसी पम्प में डालकर फसलों पर छिड़काव करने से इस विषाणु का प्रभाव दूर हो जाता है।

एंथ्रक्नोज

इस रोग में पौधे की हरी पत्तियों और फलों पर लाल–काले धब्बे बन जाते हैं, जो बाद में आपस में मिलकर एक बड़ा धब्बा बन जाता है। पौधे में यह रोग बीज के कारण होता है। इस रोग को फैलाने वाले कीट का नाम कोलेटोट्राईकम स्पिसिज है। इसे रोकने के लिए निम्न उपाय किया जा सकता है।

रोकथाम के उपाय

इस रोग से बचने के लिए बीज को बोने से पहले बीजों को गौमूत्र या नीम के तेल से उपचारित करें। जिस खेत में फसल बोई गई हो उस खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। इसके अलावा किसानों को फसल चक्र की विधि अपनाना चाहिए।

फसल

तोरई को फसल चक्र में सफलातपूर्वक उगाया जा सकता है।

फसल पकने के बाद तुड़ाई

तोरई के फलों को छोटी अवस्था में ही तोड़ लेना चाहिए नही तो फल कठोर हो जाते हैं। फलों के कठोर होने के बाद इसके गुणों में कमी आ जाती है, जिसका मूल्य बाजार में कम होता है।

उपज

तोरई की एक हेक्टेयर भूमि पर से हमें लगभग 100 से 150 कुन्तल की उपज मिल जाती है।●

अमूल्य सुझाव

- ऊसर व बंजर भूमि का उपचार कर कृषि योग्य बनाकर खेती के प्रयोग में लाएं।
- सिंचाई जल उपयोग में बृद्धि हेतु ड्रिप एवं स्प्रिकलर पद्धति पर बढ़ावा देना तथा इसके प्रयोग पर प्रशिक्षण प्रदान कर इसे बढाने तथा क्रान्तिक अवस्थाओं पर उचित मात्रा में सिंचाई करें।
- कृषि लागत में कमी हेतु कृषि यन्त्रीकरण का प्रयोग कर जीरो टिलेज, सीडड्रिल व कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ भूसा बनाने वाली मशीन के प्रयोग पर बल दिया जाय।
- मृदा स्वास्थ्य बढ़ानें के लिए जैविक उर्वरक, कार्बनिक खाद, फसल अवशेषों का प्रबन्ध व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुसार उर्वरकों के संतुलित प्रयोग पर बल दिया जाना जिससे उत्पादन बढानें के साथ लागत में कमी लावे।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की आवश्यकता एवं महत्व

सूरज कुमार* एवं डॉ. पंकज कुमार**

वर्तमान समय में जहाँ एक ओर उत्तम किस्मों के आने से तथा उत्तम फसल प्रबंधन अपनाने से फसल की पैदावार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर कृषि पारिस्थिकि तंत्र में भौतिक, जैविक, सस्य परिवर्तनों के कारण फसल में तरह–तरह के कीड़ों व बीमारियों में भी वृद्धि हुई है। इन कीड़ों एवं बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए किसानों ने रसायनिक जहरों को मुख्य हथियार के रूप में अपनाया। ये कीटनाशक (जहर) किसानों के लिए वरदान सिद्ध हुए, लेकिन आगे चलकर इनसे अनेक समस्याएं पैदा हो गईं।

कीटनाशकों के ज्यादा इस्तेमाल से हमारा वातावरण दिन–प्रतिदिन अत्यधिक प्रदूषित हो रहा है। एक ही तरह के कीटनाशकों का बार–बार प्रयोग करने से कीड़ों तथा बीमारियों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। कीटनाशकों के अंधा–धुंध प्रयोग से, मित्र कीड़े, हानिकारक कीड़ों की अपेक्षा शीघ्र मर जाते हैं, क्योंकि यह प्रायः फसल की ऊपरी सतह पर पाए जाते हैं।

नाशीजीव क्या है?

ऐसे जीव जो मुझे स्वयं को, मेरी फसल, पशु अथवा अन्य किसी वस्तु को हानि पहुँचाए अथवा ऐसा करने का इरादा रखें नाशीजीव कहलाते हैं। उदाहरण के लिए कीड़े, चूहे, चिड़ियाँ, बीमारियाँ, सूत्र कृमि, खरपतवार आदि।

नाशीजीव प्रबंधन क्यों?

फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि के लिए कीड़ों द्वारा होने वाली हानि के नियंत्रण हेतु उत्पादकों द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात मुख्य रूप से जहरीले रसायनिक कीटनाशकों का अविवेकपूर्ण उपयोग किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप गौण कीड़ों का प्रमुख नाशीजीवों में परिवर्तन, उनमें प्रतिरोधक क्षमता का विकास, एक बार नियन्त्रित नाशीजीवों का पुनः भीषणतम प्रकोप, पर्यावरण एवं खाद्य श्रृंखला में प्रदूषण, मित्र कीड़ों का विनाश तथा विभिन्न उत्पादों में कीटनाशकों के अवशेष जैसी समस्याओं का जन्म हुआ। यही नहीं कीटनाशकों के प्रयोग से परागण करने वाले विभिन्न प्रकार के कीटों की संख्या में कमी हो जाने से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव भी देखा गया। जहरीले रसायनों के प्रयोग से किसानों का फसल उत्पादन खर्च बढ़ जाता है जिससे किसानों के उत्पादन में काफी कमी हो जाती है। अतः उक्त समस्याओं से निजात पाने हेतु एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की आवश्यकता महसूस हुई।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन क्या है?

फसल उत्पादन एवं फसल सुरक्षा की मिली–जुली पद्धति जिसमें शस्य, भौतिक, यांत्रिक, जैविक, रसायनिक विधि एवं अनुवांशिक विधियों को अपना कर नाशीजीव प्रबंधन इस प्रकार किया जाए कि उनका संख्या/सघनता निर्धारित हानि स्तर से ऊपर ना बढ़ सके तथा अपनाए जाने वाली विधि सामाजिक, पर्यावरण एवं आर्थिक दृष्टि से आदर्श हो, एकीकृत/समेकित/समन्वित नाशीजीव प्रबंधन कहा जाता है।

प्रबंधन का उद्देश्य

- फसल की बुवाई से लेकर कटाई तक हानिकारक कीड़ों, बीमारियों तथा उनके प्राकृतिक शत्रुओं की लगातार एवं व्यवस्थित निगरानी रखना।
- कीड़ों एवं बीमारियों को उनके आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखना।
- सुरक्षित कीटनाशकों का सही समय पर सही मात्रा में प्रयोग करना।
- कृषि उत्पादन में कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त करने तथा साथ–साथ वातावरण को प्रदूषण से बचाना।
- पर्यावरण में संतुलन बनाए रखना।

*शोध छात्र, **सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कैसे करें?

नाशीजीव प्रबंधन में सबसे महत्वपूर्ण कीटों का सर्वेक्षण तथा सर्वेक्षण के लिए कीटों द्वारा की गई हानि के लक्षण तथा मित्र कीटों की पहचान अत्यंत आवश्यक होता है। उनका सर्वेक्षण या तो फेरोमोन प्रपंच या प्रकाश प्रपंच के प्रयोग से अथवा सप्ताह या पाक्षिक अंतराल पर खेतों, बागों में जाकर निरीक्षण करके किया जा सकता है।

नाशीजीव प्रबंधन के प्रयोग में लाई जाने वाली मुख्य क्रियाएँ

बीज के चयन तथा बुवाई से लेकर कटाई तक विभिन्न विधियों का प्रयोग समयानुसार एवं क्रमानुसार नाशीजीव प्रबंधन में अपनाई जाती है।

(1) व्यवहारिक विधि

परंपरागत अपनाए जाने वाली कृषि क्रियाओं में ऐसा क्या परिवर्तन लाया जाए, जिससे कीड़ों तथा बीमारियों से होने वाली समस्याओं को या तो रोका जाए, या कम किया जाए लेकिन आधुनिक रसायनों के आने से इनका प्रयोग कम होता जा रहा है।

- फसल एवं खरपतवार के अवशेषों को नष्ट करना।
- मई–जून की गहरी जुताई करके मृदा में मौजूद कीटों को नष्ट करना।
- प्रतिरोधक किस्मों का चयन करना तथा बोने से पहले भूमि एवं बीज उपचार करना।
- समुचित जल प्रबंधन।
- उर्वरक की सही मात्रा में उचित समय पर देना।
- एक ही फसल को उसी खेत में बार–बार ना बोना। इससे कई कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है।
- खरपतवार का समुचित प्रबंधन करना, खरपतवार कई प्रकार की कीटों एवं बीमारियों को संरक्षण देते हैं।
- बुवाई के 45 दिनों तक खेतों से खरपतवार को फूल आने की अवस्था से पहले ही निकाल कर नष्ट कर दें।

(2) यांत्रिक विधि

इस विधि को फसल रोपाई के बाद अपनाना अति आवश्यक है। इसके अंतर्गत निम्न तरीके अपनाए जाते हैं।

- कीटों की विभिन्न अवस्थाओं को इकट्ठा कर नष्ट करना।
- खेत में बाँस के डंडे लगा दें (बर्ड पर्चर) जिससे चिड़ियों को बैठने का उचित स्थान मिले।
- प्रकाश प्रपंच की सहायता से रात को कीड़ों को आकर्षित करना तथा उन्हें नष्ट करना।
- सफेद मक्खी व माहू के प्रबंधन के लिए पीला चिपचिपा प्रपंच का प्रयोग करना।

(3) जैविक विधि

फसलों के नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए प्राकृति शत्रुओं को प्रयोग में लाना जैव नियंत्रण कहलाता है।

(4) आनुवांशिक नियंत्रण

नर कीटों में, प्रयोगशाला में या तो रसायनों से या फिर रेडिएशन तकनीक से बांझपन पैदा की जाती है और उन्हें काफी मात्रा में खेतों में छोड़ दिया जाता है, जिससे कीटों की संख्या न बढ़ सकें।

(5) रसायनिक विधि

- आकर्षी पदार्थों का प्रयोग।
- प्रतिकर्षी पदार्थों का प्रयोग।
- नए तथा कम हानिकारक कीटनाशकों का प्रयोग।
- विकास अवरूद्ध करने वाले रसायनों का प्रयोग।

कीटनाशक रसायनों का प्रयोग नाशीजीवों के आर्थिक क्षति स्तर पार करने पर ही करना चाहिए। इसलिए संरक्षण कर्ता को नाशीजीवों के आर्थिक क्षति स्तर पर ज्ञान अति आवश्यक है। नीचे मुख्य फसलों एवं उनमें लगने वाले कीड़ों का आर्थिक स्तर दिया जा रहा है।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के लाभ

- पर्यावरण, हवा, पानी, भूमि एवं खाद्य श्रृंखला को जहरीले रसायनों से मुक्त रखता है।

सारिणी–1

मुख्य फसलों एवं उनमें लगने वाले कीटों का आर्थिक क्षति स्तर

फसल का नाम	कीट का नाम	आर्थिक क्षति स्तर
गेहूँ / जौ	1. गुजिया कीट	5 प्रतिशत प्रभावित पौधे
	2. माहू कीट	5 माहू / बाल गेहूँ में
		20 से 25 माहू / पौध जौ में
	3. सैनिक कीट	4–5 सूंड़ी / मीटर पंक्ति
	4. गुलाबी छेदक करने वाला	5 प्रतिशत प्रकोपित तना
मक्का / ज्वार	1. तना बेधक	10 प्रतिशत मृतगोभ
	2. सूट फ्लाई (तना मक्खी)	10 प्रतिशत मृतगोभ
चना	1. कटुआ कीट	1 सूड़ी / वर्ग मीटर
	2. कूबड़ कीट (सेमीलूपर)	2 सूड़ी / 10 पौध
	3. फली बेधक कीट	2–3 अंडे / पौध या 2–3 नवजात
		सूड़ियाँ या 1 प्रौढ़ सूड़ी / 10 पौध या
		5–6 पतंगा कीट / फेरोमोन ट्रैप / रात
मटर	1. तना मक्खी	5 प्रतिशत प्रकोपित पौधे
	2. फली बेधक	5 प्रतिशत प्रकोपित फली
	3. काली माहू / हरी माहू	50 माहू / 10 सेमी तने की चोटी पर
	4. नीली तितली	5 प्रतिशत प्रकोपित फली
राई / सरसों	1. आरा मक्खी	1 सूड़ी / पौध
	2. माहू	50–60 माहू / 10 सेमी तने की मध्य या
		चोटी पर या 33 प्रतिशत प्रकोपित पौधे
	3. पत्ती में सुरंग बनाने वाला कीट	2–5 सूड़ी / पौधे
	4. बालदार सूड़ी	10–15 प्रतिशत खाई गयी पत्ती
गोभी कुल की	1. पत्तियों में जाला बनानो वाला कीट	1 सूंड़ी / पौधा
सब्जियाँ	2. आरा मक्खी	1 सूंड़ी / पौधा
	3. सरपेन्टाइन लीफ माईनर	2–5 सूंड़ी / पौधा
आलू	1. माहू	20 माहू / 100 संयुक्त पत्ती
	2. पोटैटो ट्यूबरमाथ	15–20 प्रौढ़ पतंगा / ट्रैप (तीन रात में)
टमाटर	1. एक सफेद मक्खी	4 प्रौढ़ / पत्ती
	2. फल बेधक	1 अंडा / सूंड़ी / प्रकोपित फल प्रति पौधा
लहसुन / प्याज	1. थ्रिप्स	5–6 थ्रिप्स / पौधा
	2. लूर्सन सूंड़ी	1 सूंड़ी / हिल
	3. ओनियन मैगेट	1 मैगेट / कंद
मिर्चा	1. फूल की थ्रिप्स	6 थ्रिप्स / पत्ती या
		10 प्रतिशत प्रकोपित पौधे
	2. तम्बाकू की सूंड़ी	5 प्रतिशत प्रकोपित फली
	3. लूर्सन सूंड़ी	5 प्रतिशत प्रकोपित फली
	4. फल बेधक	5 प्रतिशत प्रकोपित फली

- पर्यावरण संतुलन कायम रखने में सहयोग देता है।
- आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं सामाजिक दृष्टि से उत्तम है।
- कीटों में रसायनों के प्रति सहिष्णुता तथा एक बार नियंत्रित कीटों के पुनः भीषणतम प्रकोप में कमी।
- मित्र कीटों का बचाव।●

गेहूँ में लगने वाले रोग एवं रोकथाम

शिवम दूबे*, डॉ. डी.के. द्विवेदी** एवं अंकज तिवारी***

गेहूँ भारत की प्रमुख रबी की फसल है। भारत जैसे विशाल देश में खाद्य समस्या को सुलझाने में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। परन्तु गेहूँ की फसल के रोगों के कारण इनकी पैदावार क्षमता कम हो जाती है, लेकिन कभी–कभी रोगों के कारण फसल पूरी तरह से तबाह हो जाती है अतः अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्म के बीज, खाद एवं सिंचाई के साथ हानिकारक रोगों का उचित समय पर रोकथाम या नियंत्रण भी आवश्यक है। इस लेख में आप प्रमुख रोगों के लक्षण और उनकी रोकथाम के उपाय जानेंगे, जिनकी सहायता से समय से रोगों की रोकथाम कर अधिकतम उपज प्राप्त कर सकेंगे।

गेहूँ के प्रमुख रोग

- काला रतुआ (तना किट्ट)
- भूरा रतुआ (पत्ती किट्ट)
- पीला रतुआ (धारीदार किट्ट)
- हिल या पहाड़ी बंट
- करनाल बंट
- पर्णीय झुलसा या अंगमारी
- चूर्णिल आसिता
- गेगला या सेहूँ रोग

काला रतुआ (तना किट्ट)

गेहूँ की फसल का यह रोग प्रभावित पौधों के तने, संधिस्तंभ, पर्णछंद, पत्तियों और डंठलों के ऊपर लाल भूरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे (यूरीडीनोस्पोर) बनते हैं, जो धीरे–धीरे बड़े होकर आपस में मिलकर बड़े–बड़े धब्बे बनाते हैं एवं इनका रंग गहरा भूरा तथा बाद में काला हो जाता है। रोग से प्रभावित पौधों की ऊँचाई घट जाती है, बालियों में दाने कम, सिकुड़े हुए एवं भार में हल्के उत्पन्न होते हैं।

भूरा रतुआ (पत्ती किट्ट)

प्रारम्भ में गेहूँ की फसल के इस रोग के लक्षण पत्तियों की ऊपरी सतह पर अनियमित रूप से बिखरे हुए छोटे गोलाकार और हल्के नारंगी रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। बाद में धब्बे पत्तियों की दोनों सतहों पर बन जाते हैं। रोग ग्रसित पौधे छोटे रह जाते हैं, बालियों में दाने कम और सिकुड़े हुए बनते हैं।

पीला रतुआ (धारीदार किट्ट)

रोग के लक्षण पत्तियों पर पिन के सिर जैसे छोटे–छोटे अण्डाकार, चमकीले पीले रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं, जो पत्ती की शिराओं के बीच में पंक्तियों में होने से पीले रंग की धारी बनाते हैं। बाद में पत्ती की बाह्य त्वचा के नीचे काले रंग के टीलियम रेखाओं के रूप में बनते है, जो चपटी काली पपड़ी द्वारा ढके रहते हैं। रोग ग्रसित पौधों की पत्तियाँ सूख जाती हैं। काला, भूरा एवं पीला रतुआ रोग के नियंत्रण हेतु (प्रोपीकोनाजोल) टिल्ट के नाम से मिलता हैं इस दवा को 500 मिली/हेक्टेयर 800–1000 ली पानी में घोलकर दो से तीन बार छिड़काव करने से इसकी रोकथाम हो जाती है।

हिल बंट (पहाड़ी बंट)

रोग से प्रभावित पौधे छोटे रह जाते हैं, समय से पूर्व ही पक जाते हैं। रोगी पौधे की बालियाँ संकीर्ण और लम्बी निकलती हैं, जो नीला हरा रंग लिए होती हैं। बाली में दानों के स्थान पर, काले रंग का चूर्ण भर जाता है और रोगी बालियों को दबाने पर सड़ी मछली जैसी दुर्गन्ध आती है।

रोकथाम

- गेहूँ की फसल के इस रोग के नियंत्रण के लिए बीज को बुवाई से पहले एग्रोसन जी एन से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा/अथवा 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।
- रोग रोधी प्रजाति का उपयोग करें।

*शोध छात्र, **प्राध्यापक, ***शोध छात्र, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

करनाल बंट

करनाल बंट को गेहूँ का कैंसर भी कहा जाता है। रोग के लक्षण बाली में दाने बनने के बाद ही दिखाई पड़ते हैं। संक्रमित बाली के कुछ दाने आंशिक रूप से काले चूर्ण में बदल जाते हैं।

रोकथाम

गेहूँ की फसल के इस रोग के नियंत्रण हेतु 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन का छिड़काव बाली निकलते समय करने से रोग का प्रसार रूक जाता है। बुवाई पूर्व 1 ग्राम बाविस्टीन प्रति किग्रा बीज से उपचारित करके बुवाई करें।

पर्णीय झुलसा (अंगमारी)

रोग के लक्षण में सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे, अण्डाकार, भूरे रंग के और अनियमित रूप से बिखरे हुए धब्बे आपस में मिलकर पत्ती का अधिकांश भाग ढक देते हैं।

रोकथाम

गेहूँ की फसल के इस रोग के नियंत्रण हेतु डाइथेन एम. 45 का 0.25 प्रतिशत अथवा कार्बेन्डाजिम 1.5 ग्राम/ली पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णिल आसिता

प्रभावित पौधे की पत्तियों पर भूरे सफेद रंग के चूर्ण के ढेर दिखाई देते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पर्णछंद, तना और तुषनिपत्र आदि भी भूरे–सफेद चूर्ण से ढक जाते हैं। रोग ग्रसित पौधों द्वारा दाने छोटे और सिकुड़े हुए उत्पन्न होते हैं।

रोकथाम

इस रोग के नियंत्रण के लिए सल्फर का 3 किग्रा पर्णीय छिड़काव प्रति हेक्टयर करना चाहिए।

गेगला रोग (सेहूँ रोग)

रोगी पौधों की पत्तियाँ ऐंठकर विकृत हो जाती हैं एवं तना लम्बा हो जाता है। रोग से प्रभावित कुछ पत्तियों पर छोटी, गोलाकार उभरी हुई पिटिकायें बनती हैं और रोगी पौधे से निकली बालियाँ छोटी, मोटी और अधिक दिनों तक हरी बनी रहती हैं। इन बालियों में दाने पिटिकाओं में बदल जाते हैं, जो पहले चमकीली और गहरे रंग की एवं बाद में भूरे काले रंग की हो जाती है।

रोकथाम

कार्बोफ्युरान (3 प्रतिशत) 65 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज के साथ डालने पर सूत्रकृमि का प्रकोप कम हो जाता है।●

लेखकों से अनुरोध

- लेख भेजने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आप पूर्वांचल खेती की वार्षिक सदस्यता ग्रहण कर लिए हैं, जो रूपया दो सौ बीस (220.00) मात्र ही देय होगा। एक लेख में जितने भी लेखक होंगे सभी की सदस्यता अनिवार्य होगी।
- लेख भेजते समय पूर्वांचल खेती की सदस्य संख्या तथा सदस्यता अवधि सभी लेखकों को लेख के ऊपर लिखना अनिवार्य होगा।
- लेख फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, गृह विज्ञान, मत्स्य अथवा पशुपालन आदि विषयों पर आधारित हो।
- लेख दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप हो।
- लेख आकर्षक एवं अपने में ठोस हो।
- लेख आंकड़े से भरपूर हो।
- सम्बन्धित माह तथा मौसम की जानकारी से छः माह पूर्व प्रेषित हो।

प्रधान सम्पादक

आलू के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

अंकज तिवारी*, डॉ. डी.के. द्विवेदी** एवं शिवम दूबे***

आलू सब्जियों की मुख्य फसल है इसकी खेती भारत में प्रमुख फसल के रूप में की जाती है परन्तु आलू उत्पादन के दौरान रोगों के कारण इसकी खेती प्रभावित होती है और किसानों को 60–70 प्रतिशत तक नुकसान उठाना पड़ रहा है। इस लेख का प्रमुख उद्देश्य किसानों को आलू के प्रमुख रोगों और लक्षणों की जानकारी देना है ताकि वे उसे पहचान कर उस रोग का उचित प्रबंधन कर सकें।

(1) आलू फसल में अगेती अंगमारी (अर्ली ब्लाइट)।

(2) आलू का पछेती अंगमारी (लेट ब्लाइट)।

(3) आलू में भूरा विगलन रोग एवं जीवाणु म्लानी रोग (ब्राउन रस्ट)।

(4) आलू की फसल का कला मस्सा रोग (ब्लैक वार्ट डिसीज़ ऑफ पोटैटो)।

(5) आलू में सामान्य स्कैब या स्कैब रोग।

(1) आलू फसल में अगेती अंगमारी (अर्ली ब्लाइट)

यह रोग फफूँद की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण नीचे की पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के छोटे पूरी तरह बिखरे हुए धब्बों से होता है, जो अनुकूल मौसम पाकर पत्तियों पर फैलने लगते हैं, जिससे पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस बीमारी के लक्षण आलू के कन्दों में भी दिखते हैं भूरे रंग के धब्बे जो बाद मे फैल जाते हैं, जिससे आलू खाने योग्य नहीं रहता है।

प्रबंधन

- बुवाई से पूर्व खेत की सफाई कर पौधों के अवशेषों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- आलू के कंदों को एगलाल या कार्बेन्डाजिम 1 प्रतिशत के 0.1 प्रतिशत घोल में 2 मिनट तक डुबाकर उपचारित करके बोना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी प्रजाति का प्रयोग करें, जैसे–कुफरी जीवन, कुफरी सिंदूरी आदि।
- इण्डोफिल 45 का 2.5 ग्राम/ली पानी में घोलकर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए। फाइटोलान, ब्लाईटॉक्स 50 का 0.3 प्रतिशत 12 से 15 दिन के अन्तराल में 3 बार छिड़काव करना चाहिए।

(2) आलू का पछेती अंगमारी (लेट ब्लाइट)

यह रोग फफूँद की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण सबसे पहले नीचे की पत्तियों पर हल्के हरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो जल्द ही भूरे रंग के हो जाते हैं, रोग की विशेष पहचान पत्तियों के किनारे और अग्र भाग का भूरा होकर झुलस जाना है। इस

*शोध छात्र, **प्राध्यापक, ***शोध छात्र, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

रोग के लक्षण कंदों पर भी दिखाई पड़ते हैं, जिससे उनका विगलन होने लगता है।

प्रबंधन

- बुवाई के पूर्व कन्दों का निरीक्षण कर रोग ग्रस्त कन्दों को नष्ट कर देना चाहिए।
- प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन किया जाना चाहिए, जैसे कुफरी अलंकार, कुफरी गोरी, कुफरी ज्योति आदि।
- इन्डोफिल 45 का 2.5 ग्राम/ली की दर से 2–3 छिड़काव करना चाहिए। बोर्डो मिश्रण 4:4:50, कॉपर आक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत का छिड़काव 12–15 दिन के अंतराल में तीन बार करना चाहिए।

(3) आलू में भूरा विगलन रोग एवं जीवाणु म्लानी रोग (ब्राउन रस्ट)

यह जीवाणु जनित रोग है। रोग ग्रसित पौधे सामान्य पौधे से बौने होते हैं, जो कुछ ही समय में हरे के हरे ही मुरझा जाते हैं। प्रभावित पौधों की जड़ों को काटकर काँच के गिलास में साफ पानी में रखने से जीवाणु रिसाव स्पष्ट देखा जा सकता है। अगर इन पौधों में कन्द बनता है तो कन्दों को काटने पर भूरे रंग की धारियाँ दिखाई पड़ती हैं।

प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई किया जाना चाहिए।
- प्रमाणित बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- बुवाई के पूर्व खोद के निकाले गए रोगी कंदों को नष्ट कर देना चाहिए।
- कंद लगाते समय 4–5 किग्रा प्रति एकड़ की दर से ब्लीचिंग पाउडर उर्वरक के साथ कुंड में मिलायें।
- रोग दिखाई देने पर अमोनियम सल्फेट उर्वरक के रूप में देना चाहिए जो रोग जनक पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

(4) आलू की फसल का काला मस्सा रोग (ब्लैक वार्ट डिजीज ऑफ पोटैटो)

यह रोग फफूँदी की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण पौधे एवं कंदों पर दिखाई पड़ता है। कंदों पर भूरे रंग के मस्सों की तरह उभार दिखाई देते हैं। जिससे कंद खाने योग्य नहीं रह जाता है।

प्रबंधन

- प्रमाणित बीज प्रयोग करें।
- रोग ग्रस्त कंदों को नष्ट कर देना चाहिए।
- प्रतिरोधी जातियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(5) आलू में सामान्य स्कैब (स्कैब रोग)

यह रोग फफूँद की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण पौध एवं कंदों पर दिखाई पड़ता है। कंदों पर हलके भूरे रंग के फोड़े के समान स्कैब पड़ते हैं जिसके कारण कंद खाने योग्य नहीं रह जाता है।

प्रबंधन

- प्रमाणित बीज का प्रयोग चाहिए।
- रोग ग्रस्त कंदों को नष्ट कर देना चाहिए।
- बीज को आर्गेनोमरक्यूरिल जैसे इमेशान या एगलाल घोल के 0.25 प्रतिशत घोल में 5 मिनट तक उपचारित करें अथवा 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति लीटर पानी में घोल से उपचारित कर बुवाई करना चाहिए। ●

किसान भाइयों,

लगातार फसल उगाने से मृदा के स्वास्थ्य में हो रही गिरावट के कारण कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में स्थिरता की स्थिति हो गयी है। समय रहते खेत की मिट्टी की दशा को सुधारने एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि किसान भाई अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवाने के प्रश्चात संस्तुति मात्रा में सुंतुलित उर्वरक का प्रयोग करें तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य बनवायें। फसल अवशेष को न जलाएं उसका प्रबन्ध कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाएं। खेत को खाली न छोड़ें बल्कि हरी खाद हेतु सनई व ढैचा पलटकर हरी खाद बनायें। जीवांशिक खादों का अधिक से अधिक प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाने पर बल दें।

प्याज में समेकित नाशीजीव प्रबंधन

डॉ. प्रदीप कुमार*, डॉ. गुलाब चन्द यादव** एवं डॉ. छबि नाथ राम**

भारत में उगाई जाने वाली सब्जी की फसलों में प्याज का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी खेती पूरे देश में व्यापक रूप से की जाती है एवं जनसाधारण द्वारा किसी न किसी रूप में प्रयोग की जाती है। प्याज का उपयोग सलाद के अलावा विभिन्न प्रकार के शाकाहारी व मांसाहारी व्यंजन बनाने में किया जाता है। प्याज अपनी गंध, तीखेपन और औषधीय मूल्य के कारण अपनी एक अलग पहचान रखती है। प्याज में कीटों, रोगों और सूत्रकृमियों का बढ़ता प्रभाव उत्पादन के लिए प्रमुख अवरोधक है जिसके कारण कभी–कभी उपज में काफी नुकसान होता है। इनके नियंत्रण हेतु रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता के परिणामस्वरूप प्रतिरोधकता, पुनरुत्थान, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के अतिरिक्त, किसानों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव देखे जा रहे हैं। साथ ही ये रसायन नाशीजीवों और मित्र कीटों के बीच नाजुक संतुलन को प्रभावित करते हैं। इन सभी समस्याओं को कम करने हेतु प्याज में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन को अपनाना चाहिए।

कीट नाशीजीव

थ्रिप्स

थ्रिप्स प्याज का सबसे गंभीर कीट है। पूरे देश में जहाँ प्याज की फसल उगाई जाती है, वहाँ पर यह कीट आम है। थ्रिप्स छोटा, पतला, तेजी से चलने वाला, पीले से भूरे रंग के झालरदार पँख वाले होते हैं। निम्फ पँखहीन होते हैं। यह हरे पत्तियों के बीच पाया जाता है, जहाँ नई उभरती हुई पत्तियों का रस चूसता है तथा लघु, सफेद चाँदी जैसे धब्बे सभी पत्तियों पर देखे जा सकते हैं। प्रभावित पौधों में मुड़ी पत्तियों के साथ वृद्धि रूक जाती है। अगर संक्रमण शुरूआती चरण में होता है तो बल्ब गठन पूरी तरह से रूक जाता है और पौधे धीरे–धीरे मर जाता है। इस कीट के प्रकोप से पौधे में अन्य रोग भी लगने लगते हैं।

सिर छिद्रक (हेड बोरर)

सिर छिद्रक उत्तरी भारत में प्याज की बीज फसल का एक गंभीर कीट है। इसके लार्वे फूलों की डंडी काट कर डंठल को खाते हैं। कई फूल डंठल एक लार्वा से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। बल्कि फसल भी लार्वे द्वारा काटने और हवाई भागों के खाने से क्षतिग्रस्त होती है। लार्वा हरा रंग का व शरीर पर गहरे भूरे रंग की धारियाँ होती हैं। लार्वा पुष्पदंड के अंदर या मिट्टी में प्यूपा बनाता है।

प्याज मक्खी

पूर्ण विकसित मैगट छोटे, भूरे लाल, सफेद रंग का लंबाई में लगभग 8 मिमी का होता है। मैगट बल्बों में छिद्र करके पौधे को मृदु और पीले बना देते हैं। यह खेत में कुम्हलाने और भंडारण में सड़न पैदा करते हैं। प्याज मक्खी छोटी घर मक्खी की तरह दिखती है जो गर्मियों की शुरूआत में उड़ती हुई दिखाई देती है।

रोग

आर्द्र गलन

यह नर्सरी (पौधशाला) का प्रमुख रोग है। यह रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम नामक फफूँद के कारण होता है। इससे लगभग 60–70 प्रतिशत तक नुकसान होता है। यह रोग दो अवस्थाओं में होता है, पहली अवस्था में भूमि की सतह से बीज का अंकुरण निकलने से पहले ही यह रोग लग जाता है। इससे पौधा भूमि की सतह से ऊपर आने से पहले ही मर जाता है। दूसरी अवस्था में अंकुरण होने के 10–15 दिनों बाद इस रोग का प्रकोप होता है। पौध के भूमि की सतह पर लगे हुए भाग पर सड़न दिखाई देती है। बाद में पौधा इसी सतह से गिरकर सूख जाता है।

स्टैमफीलियम झुलसा

यह रोग स्टेम्फेलियम बेसीकेरियम नामक फफूँद द्वारा होता है। प्रारंभ में छोटे सफेद और हल्के भूरे धब्बे बनते

*सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान, **सह प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

हैं, जो बाद में भूरे या काले हो जाते हैं। प्याज में यह धब्बे पत्ती के भीतरी सतह में फैल जाते हैं, जबकि बाहरी सतह हरी रहती है। यह रोग उत्तरी और पूर्वी भारत में प्याज के पत्तों पर बहुत ही सामान्य है।

बैंगनी ब्लाच

रोग पत्तियों पर छोटे, सफेद, धँसे घावों के रूप में प्रकट होता है। ये धब्बे बाद में बड़े होकर और अंततः पूरी पत्ती को घेर लेते हैं। बाद में अंडाकार आकार के काले क्षेत्र पत्तियों की सतह पर दिखाई देते हैं, विशेषतया बैंगनी रंग को बनाए रखते हैं। पत्तियाँ और तने धीरे–धीरे गिर जाते हैं। गाढ़े क्षेत्र घावों के भीतर विकसित हो सकते हैं। यह रोग खरीफ के मौसम में आम है। गर्म और आर्द्र जलवायु के साथ तापमान 21–30 डिग्री सेन्टीग्रेड और सापेक्ष आर्द्रता 80–90 प्रतिशत रोग को बढ़ाती है।

प्याज पीला बौना रोग

यह एक वायरल रोग है जो यंत्रवत प्रसार के साथ कीट वाहक द्वारा फैलता है। इस रोग से गंभीर संक्रमित पौधे स्तंभित, बौना और फूल डंठल मरोड़ जाते हैं। प्रभावित पत्तियाँ और तना सामान्य हरे से पीले रंग के विभिन्न रंगों में बदल जाती है। पत्तियाँ समतलन और कुंचित होकर मुड़ जाती हैं।

आइरिस पीला धब्बा वायरस

यह भारत में प्याज की बल्ब और बीज फसल में एक उभरती हुई बीमारी है। प्याज पर लक्षण पत्तियों और पुष्पदंड पर हरिमाहीन धब्बे के रूप में प्रकट होते हैं जो बाद में फूल डंठल झुकने पर पीले और परिगलित धब्बों में बदल जाता है। अग्रिम अवस्था में एकल धूरी के आकार का हरिमाहीन घाव सम्मिलित होकर पत्तियों और पुष्पदंड को मुर्झा देते हैं जिससे बल्ब भी प्रभावित होता है। यह विषाणु थ्रिप्स के माध्यम से फैलता है। प्रभावित पौधों के पत्तों पर कई आँख के समान धब्बे दिखाई देते हैं।

पोषक तत्वों की कमी

सल्फर की कमी

प्याज सल्फर प्रिय पौध है और उच्च सल्फर की आवश्यकता होती है। यह सल्फर की कमी के प्रति अतिसंवेदनशील है, जिसके परिणामस्वरूप टिप बर्निंग होती है। छोटी पत्तियों समान रूप से नीले रंग की होती है। पौधे के कमजोर, पतला, स्तंभित होने से विकास धीमा हो जाता है और छोटा आकार, कम वजन और हल्के लाल का बल्ब बनता है। सल्फर की कमी से प्याज में तीखापन प्रभावित होता है।

प्याज की फसल में समेकित नाशीजीव प्रबंधन विधियाँ

नर्सरी अवस्था

- बुवाई से 15–20 दिन पहले मोटी पारदर्शी पॉलिथीनसीट के साथ खेतों की मिट्टी सौरीकरण करें।
- पानी की अच्छी निकासी के लिए जमीनी सतह से 10 सेमी ऊपर नर्सरी की क्यारी बनायें।
- पौध की क्यारी में गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट से संवर्धित ट्राइकोडरमा 50 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से मिलायें।
- असंभावित वर्षा के कारण होने वाले पीलेपन को कम करने के लिए यूरिया का 0.2 प्रतिशत दर से आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।

मुख्य फसल

- प्याज की थ्रिप्स के खिलाफ बाधा फसल के रूप में बाहरी पंक्ति में मक्का की बुवाई करें।
- रोपाई से पहले स्यूडोमोनास इनफ्लुओरिसेन्स 5 मिली प्रति लीटर का घोल में पौध को डुबायें।
- फसल मौसम के दौरान पर्याप्त सिंचाई करें क्योंकि निरंतर नमी के कारण मृदा में विद्यमान थ्रिप्स सड़ जाते हैं।
- थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए स्प्रिंकलर के द्वारा खेतों की सिंचाई करें।
- थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए नीले रंग के ट्रैप्स 20 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करें।
- थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए डायमिथिओएट 30 ईसी

(शेष पृष्ठ 23 पर)

पशुओं में परजीवी रोग

डी.डी. सिंह*, अनिल कुमार**, एस.के. यादव*** एवं ए.पी. राव****

भारत देश दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है, लेकिन हमारे देश में प्रति पशु उत्पादकता काफी कम है। किसी भी पशु की उत्पादकता को बनाये रखने के लिए उसका स्वस्थ होना नितान्त आवश्यक है। पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता पर जीवाणु जनित रोगों के अलावा परजीवी जनित रोगों का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। परजीवी पशुओं को कमजोर कर देते हैं जिनसे उनकी उत्पादकता घट जाती है, अगर समय रहते इनका उपचार न किया जाए तो पशुओं की मृत्यु भी हो सकती है।

परजीवी सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं

(1) अन्तः परजीवी

(2) बाह्य परजीवी

बाह्य परजीवी

इन बीमारियों का अगर समय रहते ध्यान न दिया जाए तो पशु पालकों को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ सकती है। लेकिन इन बीमारियों से बचाव के अगर समुचित उपाय कर लिए जाए तो पशुपालक आर्थिक हानियों से बच सकते हैं।

बाह्य परजीवी द्वारा होने वाली बीमारियाँ कुछ इस प्रकार से है।

(1) टिक द्वारा

इनके अन्तर्गत आने वाले अन्तः परजीवी मुख्यतः आटोबियस, इक्सोडिस, हिमोफाइसेलिस, डरमोकेन्टर इत्यादि है। ये चमड़ी के ऊपरी सतह से शरीर के अन्दर बीमारी फैलाते हैं और ज्यादा समय तक रहने पर शरीर से खून चूसते रहते हैं जिससे पशु जल्द ही कमजोर और बेकार हो जाता है ये परजीवी अन्य संक्रामिक बीमारियों को फैलने में सहायक होता है इनके लक्षण सामान्यतः खुजली व बेचैनी है।

(2) माइट द्वारा

इनके अन्तर्गत आने वाले परजीवी मुख्यतः सार्कोप्टिस, सोरॉप्टिस, डेमोडेक्स इत्यादि होते हैं। इनके लक्षण सामान्यतः कान पर, मुँह पर, पैरों और पूँछ पर पाये जाते हैं। इनकी वजह से शरीर के उपरोक्त भागों खुजली, बेचैनी, लाल चकत्ते और बाल झड़ने की समस्या पशुओं को हो जाती है। इन परजीवियों के कारण पशु बिल्कुल कमजोर हो जाता है और उत्पादन क्षमता घट जाती है। बहुत अधिक समय तक बीमारी से रह जाने से पशु की मृत्यु हो जाती है।

बचाव के उपाय (उपचार)

(1) आइवरमेक्टिन 0.2 मिग्रा/किग्रा वजन के हिसाब से अन्तः चमड़ी के द्वारा दिया जाना चाहिए।

(2) एन्टीबायोटिक भी साथ में देना चाहिए।

(3) कैलामिल और बीटाडिन नामक लोशन को समान मात्रा में मिलाकर प्रभावित स्थान पर लगाना चाहिए।

जूएँ द्वारा

इनके अन्तर्गत बोविकोला कैप्री, लाइनोग्नैथस इत्यादि आते हैं। लक्षण सामान्यतः खुजली लाल चकत्ते और खून की कमी होना है।

उपचार

(1) आइवरमेक्टिन का इन्जेक्शन चमड़ी के द्वारा 0.2 मिग्रा/किग्रा वजन के हिसाब से देना चाहिए।

(2) ब्यूटॉक्स दवा (1 मिली को 1 लीटर पानी में घोल बना कर) 15 मिनट तक पशु के शरीर पर लगाकर छोड़ देना चाहिए उसके उपरान्त पशु को नहला देना चाहिए।

मक्खी द्वारा

इनके अन्तर्गत मुख्यतः न्यूसिल और कैलिफोरा नामक मक्खियाँ आती हैं जिन्हें ग्रीन बॉटल फ्लाई औ ब्लू बॉटल फ्लाई के नाम से भी जाना जाता है। बीमारी मुख्यतः मक्खियों के लार्वा से होती है जो चमड़ी में घाव कर देती है। इनके लक्षण भी खुजली और घाव है

*सह प्राध्यापक, ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, मसौधा, अयोध्या, **सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान), ****निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

जिसमें कभी कभी कीड़े भी पड़ जाते हैं और दूध में भी कमी आ जाती है।

उपचार

टरपेन्टाइन के तेल को घाव में डाल देना चाहिए और कुछ देर बाद कीड़ों को चिमटी से निकाल देना चाहिए। उसके उपरान्त कोई भी घाव सुखाने वाले स्प्रे मारना चाहिए। (टॉपिक्योर, स्किनहोल, मैगटआउट इत्यादि)

अन्तः परजीवी

ये वो परजीवी होते हैं जो शरीर के अन्दर के अंगों को प्रभावित करते हैं, इनसे भी दुग्ध उत्पादन काफी हद तक गिर जाता है। बहुत ज्यादा समय तक रह जाने पर पशु मर भी सकता है।

अन्तः परजीवियों में सामान्यतः बीमारी फैलाने वाले प्रमुख परजीवी एम्फीस्टोम, फेशिओलर, मोनीजिया, आइमेरिया, हीमाक्स, ट्राइकोस्टांगाइलस, कुपेरिया इत्यादि हैं। अन्तः कृमि भौतिक संरचना के आधार पर दो प्रकार के होते हैं पहले चपटे व पत्ती के आकार के जिन्हें पर्ण कृमि एवं फीता कृमि कहते हैं और दूसरे गोल कृमि जो बेलनाकार होते हैं।

(1) फीता कृमि

यह परजीवी अधिकांशतः भोजन की नाल में पाये जाते हैं एवं पशुओं के पोषण तत्वों का उपयोग कर पशुओं को हानि पहुँचाते हैं। इन्हीं कृमियों के लार्वा पशुओं के विभिन्न अंगों में पहुँच जाते हैं और सिस्ट बनाते हैं।

(2) पर्ण कृमि

यह चपटे व पत्ती के आकार के परजीवी होते हैं इसलिए इन्हें पर्णकृमि भी कहा जाता है। इस वर्ग में मुख्यतः फेशिओला पशुओं के यकृत को नष्ट करता है जबकि एम्फीस्टोम और सिस्टोस्टोम पशुओं के रक्त का उपयोग करते हैं एवं उनके दुग्ध उत्पादन को कम करने के अतिरिक्त एनोमिया ऊतक क्षति जैसी गंभीर बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं।

(3) गोल कृमि

यह परजीवी भी पशुओं के विभिन्न अंगों में पहुँच कर हानि पहुँचाते हैं। यह परजीवी पशुओं में विभिन्न रोग जैसे खून चूसने के कारण एनीमिया, भोजन इस्तेमाल न कर पाने के कारण कमजोरी, फेफड़ों में होने के कारण निमोनिया, आँखों में होने के कारण अंधापन, गाँठ बनाना, अंगों व ऊतकों को नष्ट करना आदि अवस्था उत्पन्न कर सकते हैं।

उपचार

संक्रमित पशुओं का समय से उचित मात्रा में प्रभावी औषधियों का प्रयोग विशेषज्ञ की देखरेख में निम्न औषधियों का उपयोग किया जाना चाहिए।

(1) एलबेण्डाजोल मुँह द्वारा 5–7.5 मिग्रा/किग्रा के हिसाब से देना चाहिए।

(2) टेट्रामिजोल मुँह से 15 मिग्रा/किग्रा के हिसाब से देना चाहिए।

(3) पेरान्टल टाटरेट मुँह से 2.5 मिग्री/किग्रा के हिसाब से देना चाहिए।

(4) आइवरमेक्टिन चमड़ी या मुँह से 0.2 से 0.4 मिग्रा/किग्रा के हिसाब से देना चाहिए।

पशुओं को परजीवियों से बचाव के कुछ सामान्य उपाय

परजीवियों से होने वाले नुकसान वाली हानि से बचने के लिये यह जरूरी है कि रोग उत्पन्न होने से पहले ही बचाव किया जाये। परजीवियों से बचाव के कुछ सामान्य उपाय निम्नलिखित है।

(1) पशुओं के बाड़ों की प्रतिदिन सुबह शाम सफाई करनी चाहिए।

(2) पशुओं के अंत परजीवी संक्रमण को रोकने मध्यपोषियों को जब्त करना आवश्यक है। इसके लिए बेंजीन हेक्साक्लोराइड या फिनाइल से बाड़ों की सफाई करनी चाहिए।

(3) पशुओं को पेट के कीड़ों की दवाई हर तीन महीने पर देनी चाहिए।

(4) पशुओं को साफ सुथरा, पौष्टिक और खनिज युक्त आहार देना चाहिए।

(5) एक ही स्थान पर अत्यधिक पशुओं को नहीं रखना चाहिए।

(6) पशुओं के बच्चों को उनकी माताओं से शीघ्र अति शीघ्र अलग कर देना चाहिए क्योंकि कम उम्र में पशुओं में संक्रमण की संभावना अधिक होती है।

(7) पशुओं को निचले व गीले स्थानों जैसे तालाब आदि के पास चरने के लिए नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि इन स्थानों पर संक्रमित लार्वा मिलने की अधिक संभावना होती है।

(8) दवाई लगाने के लिए ऐसा समय चुने जिस वक्त गर्मी अधिक न हो। जैसे सुबह या फिर शाम के समय।

(9) दवा लगाने के बाद पशु को धूप में न बाँधें।

(10) सभी पशुओं को सर्वप्रथम पेट भर पानी पिलायें।

(11) पशुओं को अच्छी तरह नहलाकर साफ करें, पशु के शरीर पर कीचड़ व गोबर पूर्णतः साफ करें।

(12) दवा का उचित घोल बना कर (जैसे ब्यूटाक्स या एक्टोमिन 2 मिली/लीटर पानी) पशु के पूरे शरीर पर लगायें पूँछ के नीचे तथा पिछले पैरों व अयन के बीच में विशेष रूप से लगायें।

(13) पशु आवास की सफाई कर फर्श व दीवारों पर भी

सारिणी–1
विभिन्न मौसम में संभावित सामान्य बीमारियाँ

मौसम	बीमारी
गर्मी	बाह्य परजीवी, बबेसियोसिस, थाईलेरियोसिस दस्त लगना, लू लगना।
बरसात	गलघोंटू, लंगड़ियाँ बुखार, अफारा, सर्रा
सर्दी	निमोनिया, खुरपका, मुहँपका।

सारिणी–2
पशु का सामान्य तापमान, नाड़ी गति व श्वसन गति

पशु	तापमान फॉरनाईट	नाड़ी गति/मिनट	श्वसन गति/मिनट
गाय वयस्क	101 से 102	40 से 60	12 से 16
भैंस वयस्क	101 से 102	40 से 60	12 से 16
बच्चे गाय/भैंस	101.5 से 103.5	80 से 100	20 से 25
बकरी	103 से 104	55 से 75	20 से 30

दवा का छिड़काव अवश्य करें।

(14) एक सप्ताह के अन्तराल से तीन बार दवाई लगायें।●

(पृष्ठ 20 का शेष)

का 660 मिली या फिप्रोनिल 80 डब्लू जी का 75 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें। बल्ब बनने की प्रारंभिक अवस्था यानि रोपाई के 7 सप्ताह बाद या 50 दिन के पश्चात थ्रिप्स को नियंत्रण करना अत्यंत आवश्यक है।

- नीम की खली को सूत्रकृमि प्रबंधन के लिये 250 किग्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डालें।
- मृदुल आसिता व ब्लाईट से बचाव के लिए जिनेब 75 डब्ल्यूपी का 1.5–2.0 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ आवश्यकता अनुसार छिड़काव करें।
- बैंगनी ब्लाच के नियंत्रण के लिए डाईफेन्कोनजोल का 0.1 प्रतिशत, टेब्युक्यूनाजोल 25.9 प्रतिशत ईसी का 625 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के घोल में आवश्यकता अनुसार छिड़काव करें।
- सल्फर की कमी दूर करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर सल्फर 80 डब्ल्यूपी का 2 प्रतिशत की दर से प्रयोग करें।
- मित्र कीटों का संरक्षण करने के लिए– प्याज फसल प्रणाली में सामान्य रूप से दिखाई देने वाले मित्र कीटों की रक्षा की जानी चाहिए और इसके लिए रसायनिक नाशीजीवियों का अवाँछित और अतिरिक्त छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए।
- प्याज की नाशीजीव सहिष्णु/प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।●

घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन

डॉ. सुरेन्द्र सिंह*, डॉ. एस.के. सिंह**, डॉ. एस.एन. लाल*** एवं डॉ. अनिल कुमार****

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ–साथ पौष्टिक भोजन की आवश्यकता भी तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। इस समय हमारे देश की जनसंख्या 1 अरब के आँकड़े को पार कर चुकी है। साथ ही जनसंख्या वृद्धि दर भी ज्यादा है। इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता तेजी से घटती जा रही है। इसी बीच कृषि योग्य भूमि का रिहायशी इलाकों में बदलना, तेजी से कटते जंगल, बढ़ती गर्मी, वर्षा का अनियमित होना आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जो वनस्पति उत्पादन पर बहुत ही प्रतिकूल असर डाल रहे हैं।

इन समस्याओं के कारण जनमानस का गैर शाकाहारी पदार्थों पर भोजन के रूप में रुझान बढ़ना स्वभाविक है। साथ ही यह भी सत्य है कि आने वाले समय में संतुलित भोजन, जिसमें मानव के पोषण के लिए सभी आवश्यक तत्व हों और जो आसानी से पच जाये, का बेहतर विकल्प गैर शाकाहारी पदार्थ ही होंगे। संक्षेप में ये पदार्थ दूध, अण्डा, मांस, मछली, के रूप में जाने जा सकते हैं।

मुर्गी पालन एक आसान व कम समय में ज्यादा उत्पादन तथा लाभ देने वाला व्यवसाय है। मुर्गी पालन से अण्डा, मांस, खाद व कुछ बहुमूल्य दवायें (आवश्यक प्रक्रिया के बाद) प्राप्त होती है।

मुर्गी पालन एक सुस्थापित फार्म से लेकर घरेलू वातावरण में स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए न तो ज्यादा भूमि की आवश्यकता पड़ती है और न विशेष प्रकार की महंगी व्यवस्थाओं की।

भारतवर्ष में घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन का कार्य आदिकाल से होता रहा है। मुर्गी पालन की यह पद्धति सबसे सरल है जिसे छोटे और लघु कृषक, भूमिहीन मजदूर तथा अशिक्षित ग्रामीण महिलायें एवं बच्चे अपना सकते हैं। इस पद्धति में प्रायः 5 से 20 मुर्गियों का छोटा सा समूह एक परिवार के द्वारा पाला जाता है जो घर के आंगन, पिछवाड़े तथा गली कूचों में अन्न के गिरे दाने, झाड़ फूसों के बीज, कीड़े मकोड़े, घास की कोमल पत्तियाँ तथा घर की जूठन इत्यादि खाकर अपना पेट भरता है। केवल प्रतिकूल वातावरण में निम्न कोटि का थोड़ा सा अनाज खिलाने की जरूरत पड़ती है। इनके रात्रि विश्राम तथा शिकारियों से बचाव के लिए घर के टूटे फूटे भाग काम में आते हैं या बाँस की पुरानी टोकरी इत्यादि काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार उनके रख–रखाव और खाने पीने पर कोई खर्च नहीं करना पड़ता है। अंडे और मांस बिना किसी लागत के उपलब्ध होते हैं।

लाभ

यों तो मुर्गीपालन की यह पद्धति मोटे तौर पर देखने में अस्तित्वहीन दिखाई पड़ती है लेकिन इसका पूर्ण विश्लेषण करने पर इससे अनेकों लाभ नजर आते हैं।

(1) इस पद्धति को बहुत कम लागत पर शुरू किया जा सकता है। केवल एक बार शुरूआत में मुर्गे और मुर्गियों की खरीद में नाममात्र लागत की जरूरत

*वि.व.वि. (पशु विज्ञान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के., हैदरगढ़, बाराबंकी, ***वि.व.वि. (पशु विज्ञान), के.वी.के., बस्ती, ****वि.व.वि. (पशु विज्ञान), आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

पड़ती है और बाद का क्रम अपने आप चलता रहता है।

(2) इसके लिए किसी विशेष आवास या रख–रखाव की आवश्यकता नहीं होती है, अतः भूमिहीन अशिक्षित किसान भी इसे अपना सकते हैं।

(3) इसकी पालन व्यवस्था मुख्यतः घर की महिलाओं के द्वारा घर के अन्य कार्यों के साथ की जाती है लेकिन घर के सभी सदस्य इसमें अपना योगदान देते हैं।

(4) इस पद्धति से उत्पन्न अण्डे और मांस के उत्पादन में लागत नहीं के बराबर है।

(5) घर में अण्डे और मांस की उपलब्धता के कारण इसे खाकर लोग प्रोटीन कुपोषण से बचते हैं।

(6) अण्डे और मांस आमदनी के छोटे परन्तु नियमित स्रोत हैं।

(7) इस पद्धति में उत्पन्न अण्डे और मांस में विशेष प्रकार की सुगंध और स्वाद होता है जिसके कारण इसकी कीमत बाजार में फार्म के अण्डों और मांस की अपेक्षा काफी ज्यादा मिलती है।

(8) ग्रामीण क्षेत्रों में मुर्गी के अण्डों और मांस की उपलब्धता सुनिश्चित करने का यह एक सशक्त और आसान तरीका है।

(9) मुर्गियों से उत्तम किस्म की खाद प्राप्त होती है।

इस पद्धति के मुर्गीपालन से इतना लाभ होते हुए भी इसमें काफी कमी आयी है। इसका मुख्य कारण आज का बदलता हुआ परिवेश है। जनसंख्या की दिन दूरी रात चौगुनी वृद्धि घर के पिछवाड़े और आंगन को सीमित करती जा रही है। गली–कूँचों तथा आँगन का पक्कीकरण, कीटनाशक तथा रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग तथा बहुफसलीय उत्पादन पद्धति से कीड़े मकोड़े तथा फसलों के लिए दानों की उपलब्धता दिनों दिन घटती जा रही है। अतः आज के बदलते हुए परिवेश में घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन की परम्परागत पद्धति में भी आवश्यक सुधार लाने की जरूरत है। आज वैज्ञानिक युग में हर क्षेत्र में विज्ञान का उपयोग हो रहा है। अतः आवश्यक हो गया है कि घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन में भी वैज्ञानिक जानकारियों का प्रयोग कर उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि हम इस पद्धति की कमियों को ढूँढें और उसके निवारण के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें। इस पद्धति की मुख्य कमियाँ और उनका निवारण निम्नलिखित हैं–

(1) निम्न उत्पादन क्षमता तथा कम बढ़ोत्तरी दर

घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन में प्रायः देशी मुर्गियों का उपयोग होता है जिनकी उत्पादन क्षमता तथा बढ़ोत्तरी दर उन्नत नस्ल की विदेशी मुर्गियों की अपेक्षा काफी कम है। जिस प्रकार अधिक पैदावार के लिए उन्नत किस्म के संकरण बीज की जरूरत होती है, उसी प्रकार मुर्गियों की अच्छी नस्ल की जरूरत है जिसमें देशी मुर्गियों के अन्य गुणों के साथ–साथ उत्पादन क्षमता तथा बढ़ोत्तरी दर ज्यादा हो। केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली में देशी और उन्नत नस्ल की विदेशी मुर्गियों को मिलाकर संकर वर्ग की चार प्रकार की मुर्गियों का विकास किया गया है, जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता 180 से 200 अण्डे तक की है और यह प्रजातियाँ घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन के लिए उपयुक्त है। इन चारों प्रजातियों को उपकारी लेयर के नाम से जाना जाता है।

(2) आहार की उपलब्धता तथा इसका संतुलित होना

मुर्गियों की उन्नत नस्ल होने के कारण इनके आहार पर भी ध्यान देना होगा। साधारणतः गाँवों में लोग वर्ष के खास मौसम में उपजने वाले एक ही अनाज को मुर्गियों को खाने के लिए देते हैं। इससे आहार संतुलित नहीं हो पाता है। अतः आवश्यक है कि साल भर उपजने वाले तरह–तरह के अनाजों का मिश्रण मुर्गियों को खिलाया जाये। अगर संभव हो तो बाजार में बिकने वाला लवण मिश्रण भी मुर्गियों को दाने के साथ–साथ दिया जाये। दिया जाने वाला यह आहार

प्रति मुर्गी करीब 30–40 ग्राम की दर से शाम के समय दिया जाये जिससे दिन भर घूम फिर कर खाने से अगर उसका पेट नहीं भरा हो ता उसे खाकर पेट भर जाये। आहार की मात्रा को मौसम और घूम फिर कर खाने वाली जगहों में खाद्य पदार्थ की उपलब्धता के हिसाब से घटाया या बढ़ाया जाना चाहिए। सुबह के समय दाना देने से मुर्गियों में अपने आप घूम फिर कर दाना और कीड़े मकोड़े चुगने की आदत कम होगी।

(3) मुर्गियों का कुड़क होना

ऐसा देखा गया है कि लोग देशी मुर्गियों से वर्ष भर बच्चे निकलवाते रहते हैं। मुर्गी प्रायः 12–15 अण्डे देकर उसको सेने तथा बच्चों को पालने के लिए कुड़क हो जाती है। इस प्रकार के चार या पाँच क्रम साल भर में हो पाते हैं जिससे वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग 60 से 80 अण्डे तक हो पाती है। अतः यह आवश्यक है कि मुर्गी द्वारा दिये गये अण्डों को प्रतिदिन हटा दिया जाये। जब मुर्गी अण्डें नहीं देखेगी तो कुड़क होने की आदत कम हो जायेगी और उत्पादन में वृद्धि होगी।

(4) इनब्रीडिंग

प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक बार मुर्गी का जोड़ा खरीद लेने के बाद हर साल घर में ही बच्चे निकाले जाते हैं। इस क्रिया में बहन–भाई के क्रास से उनमें इनब्रीडिंग का प्रभाव होता है जिसके कारण अण्डे की संख्या, निषेचन तथा प्रस्फुटन में भारी कमी तथा बच्चों की मृत्यु दर में वृद्धि होती है। अतः अगर संभव हो तो पुरानी मुर्गी को उन्नत नस्ल की नयी मुर्गी से बदला जाये। अगर घर में ही बच्चे निकालना हो तो प्रयुक्त होने वाला मुर्गा हर वर्ष दूसरे गाँवों या मोहल्ले के नये पड़ोसियों से बदलना आवश्यक है। इससे संकरण का प्रभाव बना रहता है तथा उत्पादन क्षमता में कमी नहीं आती है।

(5) रोगों से बचाव

मुर्गियों को रोगों से बचाने के लिए रोग निरोधक टीके लगवाना आवश्यक है। आजकल हर ब्लॉक में टीके की सुविधा उपलब्ध है। इसके लिए आवश्यक है कि उचित समय पर टीकाकरण के लिए ब्लॉक में पशु चिकित्सक को सूचना दी जाये। टीकाकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि मुर्गी पालक एक साथ बच्चे निकालें। टीका एक दिन से एक सप्ताह की उम्र के चूजों को एक साथ दिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि मुर्गी को अण्डों पर एक या दो तीन गाँवों के लोग विचार कर एक सप्ताह के अन्दर ही बैठायें जिससे समूह में चूजों के निकलने पर टीकाकरण आसान और संभव हो पायेगी। बच्चे साल भर नहीं निकालकर वर्ष में एक या दो बार ही निकाले जायें।

इसी प्रकार मुर्गीपालन करके कुपोषण की समस्या को दूर करने के साथ–साथ आमदनी में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।●

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये

- फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, मत्स्य तथा पशुपालन विषय की वैज्ञानिक जानकारी देने वाली लोकप्रिय मासिक पत्रिका पूर्वाञ्चल खेती। चाहे प्रगतिशील किसान हों, बागवान हों या मत्स्य/पशुपालक, अनुसंधान/प्रसार कार्यकर्ता अथवा कृषि संकाय के छात्र तथा साथ ही साथ सभी के लिये उपयोगी आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, की हिन्दी मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती।
- पूर्वाञ्चल खेती की सदस्यता शुल्क रु0 270.00 मात्र (किसानों, छात्रों एवं लेखकों के लिए रू0 220.00 मात्र) है। जो निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को मनीआर्डर/नकद भुगतान द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए। सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखना न भूलें। आपका सुझाव उत्तरोत्तर सुधार हेतु प्रार्थनीय है।

जनवरी माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में बोये गये गेहूँ की प्रथम सिंचाई करके शेष नत्रजन की आधी मात्रा की प्रथम टापड्रेसिंग करें।

(2) गेहूँ की फसल में जिंक की कमी दिखाई पड़ने पर 5 किग्रा जिंक सल्फेट व 20 किग्रा यूरिया 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(3) दलहनी फसलों में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करे।

(4) गन्ने की कटाई भूमि की सतह से करें तथा सिंचाई करके 75 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से दें।

(5) मटर में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करें।

(6) चने में उकठा रोग से नियंत्रण के लिए खेत में अधिक नमी न रहने दें और उस खेत में अगले वर्ष चना न बोयें।

(7) समय से बोये गेहूँ में आवश्यकतानुसार नत्रजन की शेष मात्रा की टापड्रेसिंग करें।

(8) जिस फसल में बालियाँ निकल आई हैं और उनमें कुछ काली बालियाँ दिखायी दें तो उन्हें निकाल कर नष्ट कर दें या गाड़ दें।

(9) गन्ने की कटाई भूमि की सतह से करें तथा सिंचाई करके 75 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से दें।

(10) गन्ने के खेत की तैयारी के लिए सुधरे कृषि यंत्रों डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, सिंह पटेला का प्रयोग करें तथा गन्ने की बुवाई के लिए रिजर गन्ना प्लांटर का प्रयोग करें।

सब्जी एवं उद्यान में

डॉ. एस. के. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

(1) गर्मी वाले टमाटर की प्रजातियों जैसे एच.एस. 102, पंजाब छुआरा, कल्याणपुर, अंगूरतला आदि के पौध की रोपाई 60:50:50 न.फा.पो. प्रति हेक्टेयर डालने के बाद करें।

(2) गर्मी वाली मूली पूसा चेतकी की बुवाई करें।

(3) तैयार गढ्ढों में अंगूर की व्यवसायिक किस्में जैसे परलेट, ब्यूटी सीडलेस एवं पूसा सीडलेस की रोपाई करें।

(4) आँवला की तोड़ाई तथा बेर, अमरूद के बागों की सिंचाई करें।

(5) टमाटर में पिछैती झुलसा रोग का नियंत्रण आलू की भाँति करें।

(6) गर्मी वाली बैंगन की पौध जो नवम्बर माह में डाली गयी थी उसकी रोपाई लम्बी किस्म के 60 गुणा 60 सेमी तथा गोल वाली किस्म में 75 गुणा 75 सेमी पर करें।

(7) लोबिया की पूसा कोमल, पूसा फागुनी, ऋतुराज, 1552 किस्मों की बुवाई 20 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस तथा 30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से कूड़ों में डालकर करें।

पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के नियंत्रण के लिए 30–35 दिन की अवस्था पर 625 ग्राम 2,4 डी

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार, सह प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत तथा गेहूँसा के नियंत्रण के लिए आइसोप्रोट्यूरान 75 प्रतिशत 1.0 किग्रा को 600–800 लीटर पानी में घोलकर चपटे नाजिल वाले स्प्रेयर से छिड़काव करें।

(2) झुलसा एवं गेरूवी रोग के नियंत्रण के लिए प्रोपीकोनाजोन (टिल्ट) 500 मिली मात्रा 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर गेहूँ की फसल पर छिड़काव करें।

(3) माहू कीट नियंत्रण के लिए 250 मिली फास्फोमिडान 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(4) आलू में पिछेती झुलसा रोग के नियंत्रण के लिए डायथेन एम–45 की 2.5 किग्रा मात्रा को 750–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(5) आम में खर्रा रोग के नियंत्रण के लिए बाविस्टिन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

(6) गुजिया कीट के नियंत्रण के लिए जमीन से 1 मीटर की ऊँचाई पर तने में 30 सेमी चौड़ी पॉलीथीन की पट्टी चिपका दें।

(7) गन्ने के खेत की तैयारी के लिए सुधरे कृषि यंत्रों जैसे डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, सिंह पटेला का प्रयोग करें तथा गन्ने की बुवाई के लिए रिजर गन्ना पलांटर का प्रयोग करें।

(8) बीज उपचार 6 प्रतिशत पारायुक्त रसायन 280 ग्राम अथवा 3 प्रतिशत 530 ग्राम को 125 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर गन्ने के टुकड़े 10 मिनट तक डुबो कर करें।

(9) अरहर व चना में फली छेदक कीट के नियंत्रण के लिए इन्डोक्साकार्ब 14.5 प्रतिशत का 400 मिली प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(10) मटर में बुकनी रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक के 0.3 प्रतिशत अथवा कैराथेन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

(11) तिलहनी फसलों में झुलसा, सफेद, गेरूई एवं तुलासिता रोग के नियंत्रण के लिए डायथेन एम–45 के 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

(12) प्याज में बैंगनी धब्बा रोग के नियंत्रण के लिये 0.3 प्रतिशत ताम्रयुक्त रसायन के घोल का छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. अनिल कुमार
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) भैंस में गर्भकाल का समय चल रहा है अतः गर्म होने वाली भैंस को उन्नत नस्ल के भैंसों अथवा कृत्रिम गर्भाधान विधि से गर्भित करा दें तथा ब्याँने वाली गायों की अच्छी देखभाल करें।

(2) अधिक दूध उत्पादन करने वाले पशुओं को हरा चारा के अतिरिक्त उनके आहार में कम से कम 35–40 ग्राम खनिज लवण अवश्य दिया जाये। साथ ही साथ उन्हें संतुलित आहार और पीने के लिए साफ व ताजा पानी दिया जाये।

(3) दुधारू पशुओं एवं बैलों आदि को खुरपका मुँहपका रोग से बचाव हेतु टीकाकरण अवश्य करा दिया जाये।

(4) भेड़ तथा बकरियों को पेट के कीड़े मारने वाली दवा पान कराया जाये।

(5) अधिक दूध तथा मांस उत्पादन हेतु लोबिया तथा मक्का की बुवाई करें।

(6) गर्भित तथा शीघ्र ब्यायी भेड़ों की उचित देखभाल किया जाये।

(7) चूजों के अच्छे बढ़वार के लिए पौष्टिक चूजा आहार के साथ उनके पेय जल में विटामिन तथा एन्टीबायोटिक दवा मिला दिया जाये।

(8) मुर्गियों से अच्छा उत्पादन लेने के लिए उन्हें पौष्टिक आहार के साथ–साथ बरसीम घास भी दिया जाये।●

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : टमाटर का फल फट जाता है, कैसे बचायें?

(श्री अशोक पाण्डेय, ग्राम बेरासुर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : टमाटर का फल फटने से रोकने के लिए न फटने वाली प्रजातियों की बुवाई करें। टमाटर के खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए 7–10 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करने से फल नहीं फटेगा। रोपाई के एक सप्ताह के अन्दर 0.3 से 0.4 प्रतिशत बोरेक्स (सुहागा) के घोल का छिड़काव तथा 6 से 7 सप्ताह बाद दूसरा छिड़काव और यदि आवश्यक हो तो तीसरा छिड़काव भी इतने ही अन्तराल पर करें। उक्त सान्द्रता का घोल बनाने के लिए 70–90 ग्राम सुहागा 4 लीटर पानी में घोलना चाहिए।

प्रश्न : सरसों की खड़ी फसल में माहू का कीट नियंत्रण कैसे करें?

(श्री असलम अहमद, ग्राम जगदीशपुर, जनपद अमेठी)

उत्तर : सरसों की खड़ी फस्ल में माहू के कीट नियंत्रण हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. की दो लीटर दवा 750 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

प्रश्न : आम में बौर आने वाले हैं कौन सी दवा का प्रयोग करें?

(श्री राजाराम यादव, ग्राम अंजना, जनपद अयोध्या)

उत्तर : आम के बौर को खर्रा रोग तथा भुनगा कीट से बचाने के लिए बौर आने के बाद, परन्तु फूल खिलने से पहले 2 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) तथा 1 मिली मोनोक्रोटोफास प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 1 मिली कैराथेन+1मिली मेटासिस्टाक्स का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फल टिकाव के बाद छिड़काव करें।

प्रश्न : रबी में लगने वाले खरपतवारों को कैसे दूर किया जाये?

(श्री सियाराम गुप्ता, ग्राम नैपारा, जनपद अयोध्या)

उत्तर : रबी में मुख्यतः खरपतवार दो प्रकार के होते हैं। चौड़ी पत्ती वाली खरपतवार जैसे बथुवा, हिरनखुरी, कृष्णनील, गजरी–गजरा आदि को नष्ट करने के लिए बुवाई के 35–50 दिन के अन्दर 2–4 डी सोडियम साल्ट 90 प्रतिशत की 625 ग्राम मात्रा को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर फ्लेट फैन नाजिल से प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। ध्यान रहे कि रबी में गेहूँ की फसल में ही उपरोक्त दवा का प्रयोग करें। यदि गेहूँ के साथ राई, सरसों, चना आदि फसलें बोई गई हैं तो 2,4 डी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। दूसरे तरह के खरपतवार गेहूँसा या गेहूँ का मामा तथा जंगली जई जो कि गेहूँ के उत्पादन में एक समस्या है, को नष्ट करने के लिए आइसोप्रोट्यूरान 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 0.5 किग्रा या 75 प्रतिशत एक किग्रा को 600–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 30–35 दिन के भीतर छिड़काव करें। गेहूँ तथा अन्य दलहनी व तिलहनी जो रबी की मुख्य फसलें हैं। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथलीन नामक दवा का प्रयोग 3.3 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त बाद जमाव के पहले छिड़काव करें।●

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित